खलीफा वलीदके और किसी सेनापति अफसर वा प्रतिनिधिने भारतवर्षमें आकर यह महा अनर्थ मचा रखा था। परन्तु प्रायः सभी इतिहासोंमें इजीद या कासिमकी विशेष विशेष चढ़ाइयोंका हाल मिलता है, अतएव यह बात निस्सन्देह प्रमाणित होती है कि या तो इजीदने या कासिमने भारतवर्षीय नृपतियोंको इस प्रकार तङ्ग कर रखा था। चित्तौड़के मानराजकी सहायता करनेके लिये जिन राजाओंने तलवार उठाई थी उनकी नामावली पढ़नेसे हमारा ऊपर लिखा अनुमान बहुत कुछ सत्य मालूम होगा। ऊपर इस बातका अच्छी तरह वर्णन किया जा चुका है कि महाराज मानका मौर्यकुलमें जन्म हुआ था। उक्त मौर्यके मूलवंश के प्रमार नृपति उस समय भारतके प्रधान राजे थे। भट्टग्रन्थोंमें लिखा है कि उक्त प्रमार राजे कभी तो उज्जयिनीमें और कभी चित्तौड़में अपनी राजपीठ स्थापित करते थे †।

उस भीषण विप्लवकालमें मुसलमानोंके आक्रमणसे स्वाधीन चित्तौड़पुरीको रक्षाके लिये जो जो नृपति मानराजकी सहायताके लिये युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हुए थे उनका परिचय आगे दिया जाता है। अजमेर सौराष्ट्र और गुर्जरके नृपति; छगराज उत्कटसिंह, उत्तरदेशाधिपति बूसा; जारिजा-राजकुमार शिव; जङ्गलदेशपति जोहियाराज तथा अम्बरिया, शिपत् कुम्बर, मालुन, डहिल और हल प्रभृति अन्यान्य अनेक छोटे छोटे नृपति बड़े उत्साहसे अपने अपने सैन्यदलके सहित शत्रुओंके विरुद्ध लड़नेको तैयार हुए थे। इनके अतिरिक्त और भी बहुतसे नृपतियोंके नाम देख पड़ते हैं। पर इन सबमें "देविलदेशपति दाहिर" हीकी विशेष प्रसिद्धि है। यद्यपि कापी लिखनेवालोंने भूलसे देविलकी जगह तुआर राजधानी

† मौर्य नृपतिकी राजसभामें जो सामन्त उपस्थित रहते थे उनका वृत्तान्त पढ़नेसे प्रतीत होता है कि चन्दकविने रामप्रमारकी अधीनतामें रहनेवाले सामन्तोंका जो हाल लिखा है वह बिलकुल सत्य है। ग्रीसराज्यके सेल्यूकसके समयके इतिहासलेखकोंकी लिखावटसे भी इस बातकी सत्यता प्रमाणित होती है। ग्रीसराज सेल्यूकसने महाराज मौर्य चन्द्रगुप्तको अपनी कन्या सौंपकर उनसे मित्रता स्थापित की थी। यह बात भी ग्रीक इतिहासलेखकोंके लेखसे प्रकट होती है कि महाराज चन्द्रगुप्तकी सेनामें बहुतसे ग्रीक सैनिक नौकर थे।

"दिल्ली" वा देहलीका नाम लिख दिया है, तथापि सेनापति कासिमके युद्धविवरणमें उक्त दाहिरराजका विशेष परिचय पाया जाता है । सिन्धुराज दाहिरके कासिमके द्वारा मारे जानेपर उसका पुत्र चित्तौड़में आकर अपने पितृघातीके विरुद्ध संग्रामक्षेत्रमें दण्डायमान हुआ ।

म्लेच्छोंके उस प्रचण्ड आक्रमणसे चित्तौड़पुरीकी रक्षा करनेके समय वीरबालक बप्पाने सबसे अधिक वीरता प्रकट की थी । उसके प्रबल पराक्रमसे पराजित होकर शत्रु लोग सौराष्ट्र और सिन्धुराज्यसे एकदम भाग गये । विजयी बप्पा उनका पीछा करते करते पितृराज्य गजनीमें पहुँचा । पहलेही लिखा जा चुका है कि सलीम नामक एक मुसलमान उस समय गजनीके सिंहासनका अधिकारी था;—बप्पाने उसे सिंहासनसे उतारकर उसकी जगह अपने बहनोईको बैठाया और उक्त मुसलमान अधिकारीकी कन्याको अपनी पत्नी बनाकर वह चित्तौड़को लौट आया । कदाचित् इसी मुसलमानिनके प्रेममें फंसकर वह बड़ी उमरमें मुसलमान हो गया था ।

अब हम महाराज खुमानके समयके (सन् ८१२—८३६ ई० तकके) यवनविप्लवका हाल लिखते हैं । इस भीषण आक्रमणका कर्त्ता खुरासानका महमूद था । अब यह ठीक ठीक पता लगाना चाहिये कि यह महमूद कौन था । इस भयानक आक्रमणसे चित्तौड़पुरीकी रक्षा करनेके लिये जो हिन्दू नृपति खड़े हुए थे उनकी नामावली पढ़नेसे पता लगता है कि यह "खुरासानी महमूद" सुबक्तगीनके पराक्रमी पुत्र महमूदसे दो शताब्दि पहले प्रकट हुआ था । इस और विदित होता है कि खलीफा हारूँरशीदने ठीक इसी समय अपने राज्यका अपने पुत्रोंमें विभाग किया था और इस विभागके अनुसार उसके द्वितीय पुत्र मामूनको खुरासान, सिन्धुदेश और भारतके सब मुसलमानी राज्य प्राप्त हुए थे । यह मामून जब खुरासानका समसामयिक लिखा गया है तब विशेष विचार करनेसे यह बात अवश्य प्रमाणित हो जायगी कि लिखनेवालोंने भूलसे उक्त मामूनकी जगह महमूद लिख दिया है । इतिहासोंमें इस समयका वृत्तान्त बहुतही संक्षेपमें लिखा है और जो है वह भी बहुत नीरस है; उसमें केवल कुछ हिन्दू नृपतियोंके नामोंकी तालिका दी हुई है; पर नीरस और अप्रीतिकर होनेपर भी आवश्यकता समझकर हम उसको संक्षेपमें यहां लिखते हैं,—

"गजनीसे गिह्लोट; असीरसे तक्षक; नदालयसे चौहान; दाहिरगढ़से चालुक; सेटबन्दरसे जिरक; मुन्दरसे सेरवी; मंगरोलसे मकवाहन; जीतगढ़से जोरिया; तारागढ़से रैवर; नरावरसे कुशावह; अमचरसे कालुम; यौवनगढ़से दग्रोला; अजमेरसे गर; देहलीसे तुआर; पाटणसे राजधर सौर; भालावाड़से ग्रनिगुल; सिरोहीसे देवर; गागरोनसे खीची; जूनागढ़से यदु; पत्तीसे भाला; कन्नौजसे राठौर; चूड़ियालसे बेह; प्रायगढ़से गोहिल; जैसलगढ़से भट्टी; लाहोरसे बूसा; रोणिजासे शङ्कल; खेरलीगढ़से ग्रिहत; मण्डलगढ़से मकुल; राजौरसे बीरगुजर; कर्णगढ़से चन्देल; सीकरसे सीकरवार; अमरगढ़से जैत्व; पालीसे वीरगोट; खनतरगढ़से जारिजा; जिर्जासे धीरवर, और काश्मीरसे परिहार वा पुरीहार †।

† इस भीषण विप्लवके समय जिन हिन्दू नृपतियोंने महाराज खुमानसिंहकी सहायतामें तलवार पकड़ी थी उनकी तालिका ऊपर लिखी गई। यहांपर उनका कुछ परिचय भी दे देना उचित समझते हैं। गजनीसे जो गिह्लोटराज आये थे उनके विषयमें बहुत कुछ लिखा जा चुका है और विशेष कारणसे असीरगढ़के तक्षकके सम्बन्धमें भी हम यहां कुछ नहीं लिखेंगे। जिस असीरगढ़में तक्षकराजका अधिकार था वह इस समय ब्रिटिशराज्यके अन्तर्गत है। नदालयसे जो चौहान आये थे वे अजमेरके राजवंशकी एक शाखासे उत्पन्न हुए थे। इन्हींके गोत्रमें भालावाड़के ग्रनिगुलों और सिरोहीके देवरोंका जन्म हुआ था।

(१) सेटबन्दर मालावार-उपकूल पर है; पर उसके अधिपति जिरकके सम्बन्धमें कुछ विवरण नहीं मिलता।

(२) मुन्दरके सेरवीके सम्बन्धमें जो कुछ विवरण मिलता है उससे इतनाही पता लगता है कि यह केवल प्रमारकुलकी एक शाखा है।

(३) दर और उसकी राजधानी दग्रुन्दीके सम्बन्धमें जो कुछ प्रकट है उससे इतनाही विदित होता है कि उक्त नगर गङ्गाके किनारे कन्नौजसे कुछ दक्षिण हटकर अवस्थित था।

(४) यह सामान्य दुःखकी बात नहीं है कि किसी भट्टग्रन्थमें देहलीके तुआर राजाका नाम नहीं मिलता, परन्तु विशेष जांच करनेसे स्पष्ट प्रतीत होगा कि इस युद्धसे सौ वर्ष पहले प्रथम अनङ्गपालके द्वारा देहली नगरी पुनः प्रतिष्ठित हुई थी।

खुरासानके अधीश्वरके चित्तौड़ नगरपर आक्रमण करनेपर चित्तौड़ाधिपति खुमानकी सहायताके लिये ये सब नृपति बड़े उत्साह और स्वदेशप्रेमके साथ अपनी अपनी सेनाएँ लिये हुए चित्तौड़में आये थे। देशवैरी म्लेच्छोंसे स्वाधीनताकी रक्षा करनेके लिये इन नृपतियोंने जो वीरता, युद्धकुशलता और आत्मोत्सर्ग दिखलाया था उसका प्रमाण भारतके इतिहासमें आजतक वर्त्तमान है।

---

(५) झालावाड़से जो अग्निकुल राजा आया था उसकी उत्पत्ति चौहानकी एक शाखासे हुई थी; परन्तु उसके वंशधर कबतक उक्त दुर्गके अधिकारी थे सो नहीं कहा जा सकता।

(६) जूनागढ़से जो यादवराज आये थे उनके वंशधर बहुत दिनोंतक उक्त राज्य के अधिकारी थे।

(७) लाहोरसे जिस बूसाराजका आगमन हुआ था उसका प्रकृत कुलविवरण किसी ग्रन्थमें नहीं मिलता। फारसी भाषाके इतिहास फरिश्तामें लिखा है कि जिस समय पहलेपहल मुसलमानोंने भारतवर्षपर चढ़ाई की थी उस समय एक हिन्दू राजा लाहौरके सिंहासनपर आरूढ़ था; परन्तु वह कौन था और किस कुलमें उसकी उत्पत्ति हुई थी सो नहीं मालूम। मन्सूरके शासनकालमें अलविरूनी की लिखावटसे विदित होता है कि खृष्टीय १०वीं शताब्दिमें एक हिन्दूराजवंश काबुल और लाहोरमें राज्य करता था। उस समय सामन्त नामक एक राजा उन दोनों राज्योंका अधिकारी था। उसके उत्तराधिकारियोंमें जयपाल भी था। जयपालके पुत्र अनङ्गपालके प्रचारित सिक्कोंपर उक्त सामन्त राजाका नाम पाया जाता है और जयपाल खुमानसे १०० वर्षसे अधिक पूर्व उत्पन्न हुआ था; इससे अनुमान होता है कि महाराज सामन्तकेही राजकुलका नाम बूसा पड़ा।

(८) शहुल और उसके राज्य रोणिजाके विषयमें विशेष बातें विदित हैं। शहुल प्रमारकुलकी एक शाखा है और रोणिजा मारवाड़के अन्तर्गत है।

(९) खेरलीगढ़से जो शिहत् आये थे वे सिन्धुनदके तीरपर राज्य करते थे। प्राचीन भट्टग्रन्थोंमें उनके सम्बन्धमें बहुत बातें पाई जाती हैं। प्राय: भट्टोंके साथ शिहत्कुलके विवाहसम्बन्ध करनेकी बात देख पड़ती है। टाड साहब इस कुलको यदुकुलकी शाखा बतलाते हैं।

महाराज खुमान २४ बार शत्रुओंके विरुद्ध युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हुए थे। उन युद्धोंमें उन्होंने जो अद्भुत वीरत्व प्रकाश किया था उससे रोमके सम्राट् सीजरकी तरह उनके नामको भी उनके वंशधर विशेष याद करते थे। राजपूत लोग उनके गुणोंपर ऐसे विमोहित हो गये थे कि दूसरे माननीय राजपूत राजाओंकी भांति उनका नाम भी प्रातःस्मरणीय समझते थे। अबतक भी समय समय पर उदयपुरमें लोग कहते हैं कि "खुमान तुम्हारी रक्षा करें।" ब्राह्मणोंके परामर्शके अनुसार महाराज खुमानने अपने छोटे पुत्र जगराजको राज्यकार्य्य सौंप दिया था; परन्तु थोड़ेही दिनोंमें उनकी इच्छा बदल गई; अतएव पुनः राज्याधिकार प्राप्त करनेका विचार कर उन परामर्श देनेवाले ब्राह्मणोंको उन्होंने मरवा डाला और पुत्रसे सब अधिकार ले लिया। बेचारे निरपराध ब्राह्मणोंसे वे ऐसे रुष्ट हो गये थे कि उनके ब्राह्मण नाम पर सैकड़ों अभिशाप लगाते थे और सब ब्राह्मणोंको उन्होंने अपने राज्यसे बाहर निकलवा दिया था। परन्तु पापके मोहमें पड़कर उनसे जो बुरा कर्म हुआ उसका उपयुक्त फल उनको शीघ्र मिल गया। निर्दोष ब्राह्मणोंकी हत्यासे अपनेको कलङ्कित कर उन्होंने जो सिंहासन प्राप्त किया था उसका भोग वे अधिक दिन नहीं कर सके; बहुत शीघ्र उनके मङ्गल नामक पुत्रने उनको सिंहासनसे उतारकर उनका संहार कर डाला। दुष्ट मङ्गल भी सिंहासन पानेके लालचसे पिताको मारकर बहुत दिन राज्यसुख नहीं भोग सका। मेवाड़के सरदारोंने एकत्रित होकर उसे सिंहासनसे उतार दिया। राज्यच्युत होकर उसने मरुप्रान्तमें जाकर आश्रय लिया और वहां लदुर्वा नामक स्थानमें अधिकारकर अपना वंशवृक्ष रोपण किया। उक्त लदुर्वापाटणमें उसके वंशधर "माङ्गलीय गिह्लोट" कहे जाने लगे।

पितृघाती मङ्गलके पदच्युत होनेपर भट्टभट्टने चित्तौड़के सिंहासनपर आरोहण किया। उसके तथा उसके उत्तराधिकारी नृपतियोंके समयमें चित्तौड़की अधिकारसीमा बहुत बढ़ गई थी। माही नदीसे लेकर आबू पर्वतके नीचेतकके विशाल प्रदेशमें जो असभ्य लोग रहते थे उन्होंने उनके प्रचण्ड प्रतापसे पराजित होकर

(१०) कालंगढ़से जो चन्देल आये थे वे जिस प्रदेशमें वास करते थे उसका वर्त्तमान नाम बुन्देलखण्ड है।

उनकी अधीनता स्वीकार की थी। उस विस्तृत जङ्गली प्रदेशमें जो दुर्ग बनाये गये थे उनमेंसे धरनगढ़ और अजरगढ़ अबतक विद्यमान हैं। महाराज भर्त्तृभट्टने मालव और गुर्जर देशके १२ स्वतन्त्र स्वतन्त्र राज्योंका अपने तेरह * पुत्रोंको अधिकारी बनाया था।

महाराज खुमानके बाद १५ पीढ़ियोंतक जो नृपति चित्तौड़के सिंहासनपर आरूढ़ थे उनके राजत्वके सम्बन्धमें बहुत थोड़ी बातें वर्णनके योग्य जान पड़ती हैं। उन पन्द्रहों राजाओंकी जीवनीमें मनोहरता नहीं है, इसलिये उसके पढ़नेमें पाठकोंका मन नहीं लगेगा। उक्त समय चित्तौड़के.गिह्लोट और अजमेरके चौहान राजाओंमें कभी तो मैत्रीभाव रहता था और कभी प्रचण्ड शत्रुता देख पड़ती थी। कभी तो वे एक दूसरेका रक्त बहानेको तैयार होते थे और कभी दृढ़ सहानुभूति दिखाकर देशवैरी मुसलमानोंके भीषण आक्रमणसे मातृभूमिकी रक्षा करनेके लिये इकट्ठे हो जाते थे। चित्तौड़के वीरसिंहने चौहाननरेश दुर्लभको युद्धक्षेत्रमें मार डाला; परन्तु दुर्लभके पुत्र विशालदेवने पितृशोक भूलकर, तथा स्वदेशप्रेमिकताके पवित्र मन्त्रसे द्वेष मिटाकर, पितृहन्ता वीरसिंहके उत्तराधिकारी रावल तेजसिंहके साथ अभिन्न मित्रता की और मुसलमानोंके आक्रमण करनेपर समरक्षेत्रमें जाकर उनको रोका। राजपूतोंके इस अपूर्व गुणका हाल केवल भट्टग्रन्थोंमेंही नहीं लिखा है वरञ्च अनेक शिलालिपियोंमें भी है। भट्टग्रन्थों तथा शिलालिपियोंमें उनके विषयमें जो बातें पाई जाती हैं उनसे स्पष्ट प्रकट होता है कि स्वभावसेही वे बड़े तेजस्वी और वीर थे। शिकार खेलना, घोड़ेकी सवारी करना और अस्त्र शस्त्र चलाना उनको बहुत प्रिय थे। इन्हीं कामोंमें अधिक समय बिताना उनको पसन्द था और जब शत्रुओंके आक्रमणसे छुटकारा मिलता और मेवाड़में शान्ति विराजती तब वे अपने सहकारी सामन्तोंसेही लड़कर उस शान्तिको भङ्ग करते।

---

* इन सभोंने जो १३ राज्य स्थापित किये थे उनमेंसे केवल ११ राज्योंके नाम पाये जाते हैं। यथा,—कुम्भनगर, चम्पानेर, चौरेता, भोजपुर, लूनार, मिसरोर, सोदाक, जोधगढ़, मन्दपुर, आयतपुर और गङ्गाभाव।

चौथा अध्याय ।

चन्दकविकी लिखी ऐतिहासिक विवरणावली;—अनङ्गपाल;—पृथ्वीराज;—समरसिंह; -तातारियोंका भारतविजय;—समरसिंहकी वंशावली;—राहुप;—राहुपके उत्तराधिकारी ।

वैक्रमीय संवत् १२०६ में समरसिंहका जन्म हुआ । यद्यपि चित्तौड़के भट्ट कवियोंने उनकी जीवनी विस्तृत रूपमें लिखी है, तथापि हम केवल चन्दकविकी लिखी विवरणावलीके आधारपर उनका पवित्र वृत्तान्त यहांपर लिखते हैं। परन्तु यह वृत्तान्त लिखनेसे पहले एक और अत्यन्त आवश्यक ऐतिहासिक विषयकी ओर ध्यान देते है। प्रसिद्ध देहली नगरीमें वीरचरित तुआर नृपतियोंका राजत्व समाप्त होनेके समय भारतकी राजनैतिक अवस्थाने कैसी मूर्त्ति धारण की थी और यहांके किस प्रदेशमें कौन हिन्दू नृपति शासन करता था इस स्थानमें इस बातकी आलोचना करना विशेष प्रयोजनीय जान पड़ता है; अतएव चन्दकविके प्रसिद्ध ग्रन्थमें इस विषयमें जो कुछ लिखा है उसका ज्योंका त्यों अनुवाद हम यहां पर प्रकाशित किये देते हैं।—

"चौलुक्यराज भोलाभीम, जिसका शरीर लोहेकी तरह कठोर है, पाटण नगर में निवास करता है। आबूके वासी प्रमारवंशी जित हैं जो युद्धक्षेत्रमें ध्रुव ताराकी भांति अटल रहते हैं। मेवाड़में समरसिंह हैं; वे अत्यन्त पराक्रमी व्यक्तिसे भी कर लेते हैं और दिल्लीश्वरके शत्रु मुसलमानोंका रास्ता रोकनेके लिये लोहेकी शलाका की तरह जमकर खड़े होते हैं। इन सभोंके मध्यमें मरुभूमिके प्रतापस्वरूप निर्भय और तेजस्वी मुन्दरनरेश नाहुरराव हैं। देहलीमें सबके अधीश्वर राजाधिराज अनंङ्गपाल रहते हैं। मुन्दर, नागौर, सिन्धु, जलावत और उसके आसपासके दूसरे राज्योंके राजे; पेशावर, लाहोर और कांगड़ेके अधिकारी; तथा काशी, प्रयाग और गढ़देवगिरिके अधिपति बड़े विनीतभावसे उनकी आज्ञा मानते हैं। सिमारके नरेश उनका प्रचण्ड पराक्रम देखकर सदा भय खाया करते हैं।"—

देहलीके अन्तिम तुआर-सम्राट्के राजत्वकालमें ये ही हिन्दू राजे भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भागोंमें अपने अपने राज्यमें राज्य कर रहे थे और इसके कहनेकी तो कुछ आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि महाराज अनङ्गपाल सबसे बड़े अधिकारी थे ।

जिस दिन भट्टियोंने जबूलिस्तानसे हटाये जाकर भारतवर्षमें पुन: प्रवेश किया उसके थोड़ेही दिन बाद वे पञ्जावके शालिवाहनपुर और तन्नौर तथा मरुभूमिके लोद्रदुर्गपाटण नामक स्थान अपने अधिकारमें कर सके; और देवाल नगरी स्थापित करके जैसलमेर नगरको प्रतिष्ठित करनेका प्रबन्ध करने लगे। जिस कालमें चौहानवीर पृथ्वीराज देहलीके सिंहासनपर आरूढ़ था उस कालमें ये लोग जैसलमेर नगर बसानेमें लगे हुए थे। उस समय तक यह नगर उतना प्रसिद्ध नहीं हुआ था। जैसलमेर स्थापित करनेके बहुत दिन पूर्वहीसे भट्टी लोग वहां रहकर लङ्गोकाके आरोरनिवासी सेनापतियोंसे युद्ध कर रहे थे। दोनों पक्षोंमें बीच बीचमें भीषण लड़ाई हो जाती थी। उन युद्धोंमें विजयी होकर कभी भट्टी लोग अपने पूर्वपुरुषोंके विस्तृत राज्य (सिन्धुनदके किनारेको तक्षकराजकी राजधानी) तक अपने अधिकारमें कर लेते थे।

जिस समय मुसलमानोंके प्रचण्ड आक्रमणसे भारतवर्षमें भयानक गड़बड़ उपस्थित हुई थी उस समय भट्टी लोग उस छोटे राज्यमें रहकर राजनैतिक बातोंमें बहुत थोड़ी थोड़ी उन्नति कर सके थे। चौहानराज दिल्लीश्वर पृथ्वीराजकेही समयसे उनकी उन्नति आरम्भ हुई। इसी समयसे उनकी वीरता धीरे धीरे प्रकाशित होने लगी। भारतके इतिहासमें लिखा है कि महाराज पृथ्वीराजके यहां अखिलेश नामक एक प्रसिद्ध सेनापति था; वह भट्टीनरेशका भाई था।

ऊपर लिखा जा चुका है कि महाराज अनङ्गपाल उस समय भारतवर्षके सबसे बड़े नरेश थे। वे देहलीके प्रथम तुआरनरेश बीलनदेवकी उन्नीसवीं पीढ़ीमें उत्पन्न हुए थे। जब महाराज विक्रमादित्यने उज्जयिनी नगरीको भारतवर्षकी प्रधान राजधानी बनाया तब युधिष्ठिरका प्राचीन इन्द्रप्रस्थ नगर कई शताब्दियोंतक बहुत बुरी अवस्थामें रहा। इस लम्बी अराजकताके बाद जिस महापुरुषने पुन: उसमें जीवन डाला उसका नाम बीलनदेव था। उसने बड़े यत्न और उद्योगसे इन्द्रप्रस्थको पहले की तरह सुशोभित किया और फिर अपना नाम "अनङ्गपाल" रखकर वह वहांके सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। उसके उत्तराधिकारियोंके समयमें अजमेरके चौहान देहलीकी अधीनतामें सामन्तकी भांति थे, परन्तु चौहानराज विशालदेवके राजत्वकालमें उसकी तेजस्विताके प्रभावसे वह अधीनता नाम मात्रको लिये रह गई।

इसी समयसे चौहानोंके भाग्यने पलटा खाया और भविष्यमें जो वे भारतवर्षके सर्वाधिकारी होनेवाले थे उसकी जड़ बँधी।

जिस समय देहलीके सिंहासनके कारण महाराज अन्तिम अनङ्गपालसे कन्नौजके राठौरोंसे युद्ध हुआ, उस समय सोमेश्वर नामा चौहान राजा अजमेरके सिंहासन पर आरूढ़ था। उस लड़ाईके समय सोमेश्वरने राजाधिराज अनङ्गपालकी बड़ी सहायता की, जिससे दिल्लीश्वर बहुत प्रसन्न हुए और अपनी कन्याका उसके साथ विवाह करके उन्होंने उसको अपना दामाद बना लिया। इसी लड़कीके गर्भसे वीरवर पृथ्वीराजका जन्म हुआ। महाराज अनङ्गपाल इससे पहले कन्नौजके राजा विजयपालके साथ अपनी एक दूसरी कन्याका विवाह कर चुके थे। क्रूर स्वदेशद्रोही जयचन्द उस जोड़ेसे उत्पन्न हुआ था। जयचन्द और पृथ्वीराज दोनोंही दिल्लीश्वर अनङ्गपालके नाती थे, इनमें जयचन्द उमरमें पृथ्वीराजसे कुछ बड़ा था। कहा जाता है कि दोनों अपने नानाको बहुत प्रिय थे, परन्तु दुर्भाग्यवश अन्तमें जयचन्द उनका स्नेह और आदर नहीं पा सका। महाराज अनङ्गपालके कोई पुत्र नहीं था; वे छोटे नाती पृथ्वीराजको अधिक चाहते थे; इसलिये उसीको उन्होंने अपने विशाल राज्यका अधिकारी बनाया।

जयचन्दकी सब आशाएँ धूलमें मिल गईं। वह बहुत चाहता था कि नानाके सिंहासनका अधिकार उसे मिले। इस आशाकी पूर्त्तिका वह अधिकारी भी था; क्योंकि अनङ्गपालकी बड़ी लड़कीसे उसकी उत्पत्ति हुई थी; परन्तु दुर्भाग्यसे उसकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। पृथ्वीराजकी उमर ८ वर्षकी थी; तौभी महाराजने बड़े जयचन्दको सिंहासनका अधिकारी न बनाकर छोटे पृथ्वीराजको उसका भार सौंपा। जयचन्द यह पक्षपात सह नहीं सका। ईर्षा और द्वेषसे उसका हृदय जलने लगा। इस हृदयज्वालाके मिटानेकी चेष्टा कर उसने बड़ा अनर्थ किया।—अपने पांवोंमें तो कुल्हाड़ी मारोही, ऊपरसे समस्त भारतवर्षका नाश कर डाला! पृथ्वीराजके देहलीके सिंहासनपर आरूढ़ होनेपर उसने उसका अधिकार स्वीकार नहीं किया और जिसमें कि वह स्वयं समग्र भारतवर्षका एकमात्र अधिकारी समझा जाय इस बातका उद्योग करने लगा। मुन्दरके पुरीहर नरेश और अनहिलवाड़ा पाटनके अधिपति चौहानकुलके पुराने शत्रु थे। इस भीतरी अनबनावके समय

जयचन्दका पक्ष लेकर वे उसको पृथ्वीराजके विरुद्ध उभारने लगी। यद्यपि पृथ्वीराज ने यह बात सुन ली, तौभी पहले उसने मुन्दर और पाटणके अधिपतियोंसे कुछ नहीं कहा, परन्तु पीछे जब पुरीहरनरेशने उसको भयानक धोखा दिया और उसका बड़ा अपमान किया, तब वह उनको दण्ड देनेके लिये तलवार उठानेसे अपनेको न रोक सका। पृथ्वीराज देहलीके सिंहासन पर आरूढ़ था, उस समय मुन्दरनरेशने उसे अपनी कन्या अर्पण करनेकी इच्छा प्रकाश की। उदारहृदय पृथ्वीराजने उसकी बात स्वीकार कर ली। विवाहकी तैयारियां होने लगीं; परन्तु दुष्ट मुन्दरनरेशने बड़ा धोखा दिया; उसने अपनी कन्या उसे नहीं सौंपी। इससे महाराज पृथ्वीराज बहुत दु:खित हुए और उसके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये उन्होंने यात्रा की। इसी युद्धसे वीरवर पृथ्वीराजके भविष्य गौरवकी सूचना हुई और उनका वीरत्व धीरे धीरे लोगोंपर प्रकाशित होने लगा। उनकी उन्नति देखकर जयचन्द के हृदयमें कांटे चुभने लगे। जब उसे पृथ्वीराजकी उन्नति रोकनेका कोई उपाय नहीं दिखाई दिया, तब उसने एक युक्ति सोची;—अपनी सेनामें युद्धकुशल तातारियोंको भर्ती करना आरम्भ किया। इसीसे उसके अध:पतनका रास्ता खुला और इसीसे उसके साथ साथ भारतभूमिका भी सर्वनाश हुआ; क्योंकि हिन्दूवैरी शहाबुद्दीनको भारतवर्षमें प्रवेश करके हिन्दुओंकी स्वाधीनता छीनने और भारत के पवित्र हृदय पर मुसलमानी झण्डा गाड़नेका अवसर मिला *।

चित्तौड़ाधिपति समरसिंहका दिल्लीश्वर पृथ्वीराजकी बहिन पृथासे विवाह हुआ था। इस मङ्गलमय सम्बन्धके समय पृथ्वीराज और समरसिंहमें जो दृढ़ मैत्री स्थापित हुई थी वह कठोरसे कठोर विपद् पड़नेपर भी भङ्ग नहीं हुई। एक क्षण के लिये भी वे कभी एक दूसरेसे किसी बातपर रुष्ट नहीं हुए। यद्यपि दृषद्वतीके किनारे लड़ते लड़ते वे एक दूसरेसे इस संसारमें अलग हो गये, परन्तु कौन कह सकता है कि पीछे स्वर्गमें उनका मिलाप नहीं हुआ? हाय! कैसे कुसमयमें भारतमें आपसके फूटका बीज पड़ा था! कैसे बुरे अवसरमें भारतवासियोंने अपनेही भाइयोंका खून बहाना विचारा था! उसी दुर्दिनसे भारतका नाश आरम्भ हुआ और तभीसे सर्वसुखमय भारतवर्ष दु:खसे भरा कारागार बन गया। कुरुक्षेत्रकी

* देखिये हमारा लिखा "वीरपत्नी" उपन्यास। (गं॰प्र॰गुप्त)

खूनसे रँगी भूमि अबतक विद्यमान है और अबतक मानों कह रही है कि देखो, आपसकी फूटका यह परिणाम है । शोक कि भारतवासी इतना देख सुनकर भी नहीं चेतते !

भारतभूमिसे यह नाशकारी फूट कभी नहीं मिटी। नहीं कहा जा सकता कि इस आपसकी फूटमें पड़कर कितनोंको कुसमयमें ही इस संसारसे चला जाना पड़ा। इस बैर और फूटकी चोटका चिन्ह इस समयतक भारतके हृदयमें विद्यमान है। यह आपसका विषाद कभी कम कभी अधिक सदासर्वदा इस देशमें वर्त्तमान रहा। जब यह बहुत बढ़ जाता तब भट्टकुलके आचार्य लोग मध्यस्थ होकर आपस में निबटेरा कराकर दोनों दलोंको शान्त कर देते । यह शान्ति प्रायः विवाह-सम्बन्धसे होती। परन्तु दुःखकी बात है कि वह दो पीढ़ियोंसे अधिक न रहती। फिर शीघ्रही विद्वेषकी आग भड़कने लगती; फिर उसी प्रकार लोग पिशाचमूर्त्ति धारण करते! हतभागिनी भारतमाताके भाग्यमें ऐसीही बातें लिखी थीं! इस प्रकार भारतके राजे अपने पांवोंमें आपही कुल्हाड़ी मारते; अपने मार्गमें आपही कांटे बखेरते! उनकी इसी दुर्नीतिके कारण इस देशपर विदेशियोंका अधिकार हुआ, सुखकी भूमि भयानक श्मशान बनी और यहांके निवासी पराधीनताकी कठिन कैदमें पड़े !

पृथ्वीराजके प्रचण्ड शत्रु पाटण और कन्नौजके नृपति महाराज समरसिंहके साथ शत्रुता किये बिना न रह सके ; इस कारण उक्त दोनों नृपतियोंके विरुद्ध समरसिंहको समरक्षेत्रमें उतरना पड़ा। इसके अतिरिक्त ,अपने प्यारे मित्र पृथ्वीराजकी सहायताके लिये वे अनेक बार युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हुए थे। नगरकोटके किसी स्थानमें पृथ्वीराजको ७ करोड़ गड़ी हुई पुरानी अशर्फियां मिलीं ; इससे पाटण और कन्नौजके नृपतियोंके मनमें बहुत ईर्षा और आशङ्का उत्पन्न हुई । एक तो पृथ्वीराजकी अधीनतामें बहुत बड़ी सेना थी, दूसरे इतना धन मिल गया; तो फिर शत्रुओंकी जीतकी आशा कैसे होती? आखिर पृथ्वीराजको नीचा दिखलानेके लिये उन्होंने शहाबुद्दीनसे सहायता मांगी। जिस दिन उनके मनमें ऐसा ओछा विचार उत्पन्न हुआ उस दिनसे भारतके नाशका बीजारोपण हुआ; महाराज पृथ्वीराजका सिंहासन सहसा डगमगा उठा! शहाबुद्दीन पहलेहीसे भारत पर दांत लगाये हुए

था और अपना मतलब साधनेके लिये अवसर ढूंढ़ रहा था। सो अब सुयोग और सुसमय देखकर वह कैसे निश्चिन्त रह सकता था? बहुत शीघ्र एक बड़ी सेना संग्रह करके कन्नौजनरेश जयचन्द्रसे मिलनेके लिये उसने यात्रा की।

पृथ्वीराजको भी मालूम हो गया कि दुष्ट जयचन्द्र इस इस प्रकार उनके पीछे पड़ा हुआ है। तब उन्होंने उसको दुष्टताका उचित फल चखानेके लिये बन्दोबस्त करना आरम्भ किया और एक दूतके द्वारा महाराज समरसिंहको इन बातोंकी सूचना दी। चन्द्रपुन्डीर नामक एक सामन्त राजा उस समय लाहोरमें राज्य करता था। पृथ्वीराजने उसीको दूतकी रीति पर समरसिंहके पास भेजा। उनके अधीन जितने सामन्त थे चन्द्रपुन्डीर उन सबमें विशेष पराक्रमी था। चन्द्रकविने उसके प्रचण्ड पराक्रम, अद्भुत स्वदेशहित, कठोर उद्यम और अध्यवसायका बहुत अच्छा वर्णन किया है। जिस दिन उसने दूतका काम अपने हाथमें लिया उस दिनसे जीवनके अन्तिम समयतक उसने जो गौरवसूचक काम किये उनका हाल पढ़नेसे स्पष्ट मालूम होता है कि उसने स्वदेशके हितके लियेही मानों जीवन धारण किया था और स्वदेशकी सेवा करनेमें ही उसका जीवन व्यतीत हुआ। जिस समय शहाबुद्दीन अपनी विशाल सेना लेकर भारतवर्षमें आया था उस समय इस राजपूतवीरने रावी नदीके किनारे उसे रोका था। यद्यपि यह अपने उद्योगमें सफल नहीं हो सका, तथापि उस समय इसने जो आश्चर्यमयी वीरता प्रकट की थी उसीसे इसका पवित्र नाम सदासर्वदा इतिहासके पृष्ठों पर बना रहेगा।

अस्तु, पृथ्वीराजके यहांसे भेंटकी बहुतसी चीजें लेकर चन्द्रपुन्डीर बड़ी धूमधामसे चित्तौड़ नगरमें उपस्थित हुआ। महाराज समरसिंहने बड़े आदरसे उसका स्वागत किया और उसके रहनेके लिये उपयुक्त स्थानका प्रबन्ध कर दिया। कुछ कालतक विश्राम करनेके पश्चात् चन्द्रपुन्डीरने यथासमय महाराजसे साक्षात् करनेकी इच्छा प्रकट की। तुरन्त उसकी इच्छा पूर्ण की गई; चित्तौड़ाधिपतिकी आज्ञाके अनुसार वह उनके सामने बुलाया गया। उस समय महाराज समरसिंह एक बाघके चमड़ेके आसनपर बैठे थे; शरीरमें रक्ताम्बर पहने हुए थे; सारे अङ्गमें उनके विभूति लगी हुई थी; गलेमें कमलगट्टेकी माला और शिरपर लम्बी जटा थी। जब चन्द्रपुन्डीर उनके सामने पहुँचा तब उन्होंने आदरपूर्वक उससे बैठनेको कहा।

महाराजकी ऐसी शान्त गम्भीर मूर्त्ति, तापस वेष और उदार व्यवहार देखकर चन्द्पुन्दीरके हृदयमें बहुत भक्ति उत्पन्न हुई और उसने उनको "योगीन्द्र"के नाम से सम्बोधन करके कहा कि "सचमुच आप भगवान् महादेवके प्रतिनिधि हैं।" यह सब वृत्तान्त तथा इसके बादकी बातचीतका हाल चन्दकविने अपने काव्य-ग्रन्थमें बड़ी उत्तम रीतिसे लिखा है।

दो एक दिनमें तैयारी करके महाराज समरसिंहने अपने सालेके निमन्त्रणके अनुसार दलबलके सहित देहलीकी ओर यात्रा की। पृथ्वीराजने कुछ आगे बढ़कर आदर और स्नेहसे उनका स्वागत किया। परस्परके कुशलादि प्रश्नों तथा इधर उधरकी बातोंके बाद यह विचार हुआ कि अब क्या करना चाहिये। तुरन्त दो बातें स्थिर हुईं, (१) पाटणके राजाका दर्प चूर करना (२) मुसलमानोंके आक्रमण को रोकना। महाराज समरसिंह पाटणनरेशसे वैवाहिक सूत्रमें बंधे हुए थे; इसलिये उसके विरुद्ध न जाकर वे मुसलमानोंका आक्रमण रोकनेके लिये देहलीमें ठहरे रहे और पृथ्वीराजने सेना लेकर पाटणकी ओर यात्रा की। बहुत शीघ्र मुसलमानोंके युद्धके बाजोंकी ध्वनि देहलीसे कुछ दूरपर सुनाई दी। वैसेही राजपूतवीर भी आकाशभेदी स्वरसे उनका उत्तर देकर उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े। शीघ्रही दोनों पक्षोंमें घोर लड़ाई आरम्भ हुई; परन्तु उस समय दोनों सेनाओंमें किसीकी जीत या हारके लक्षण नहीं दिखाई दिये। इस बीचमें पृथ्वीराज भी पाटणनरेशको परास्त कर बड़े उत्साहमें भरे हुए बहनोईसे आ मिले। तब दोनों वीर एकसाथ होकर मुसलमानोंसे युद्ध करने लगे। अन्तमें मुसलमान वीर शहाबुद्दीन बड़े कष्टसे अपना जीवन बचाकर भाग गया। और उसका सेनापति, विजयी राजपूतोंके हाथोंमें बन्दी हुआ।

महाराज पृथ्वीराजकी जीत हुई। उनकी सब विपत्ति बाधाएँ दूर हुईं। नगरकोटकी भूमिसे उनको जो धन मिला था उसका आधा उन्होंने अपने बहनोईको देना चाहा; परन्तु समरसिंहने उसे स्वयं न लेकर अपने सैन्य सामन्तोंमें पुरस्कारकी रीतिपर बांट दिया। इसके बाद महाराज समरसिंह पृथ्वीराजसे विदा होकर सैन्यके सहित अपनी राजधानीको लौट गये।

इस प्रकार कई वर्ष बीत गये। छोटी छोटी लड़ाइयोंमें विजय प्राप्त कर

पृथ्वीराज और समरसिंह दोनों सुखसे रहते रहे । यों ही दिन बीतते बीतते वह समय आ पहुँचा जो भारतके लिये कालस्वरूप था।। मुसलमानोंपर विजय पाकर पृथ्वीराजने सोचा था कि इसी गौरवमें उनका सब समय बीतेगा; अतएव वे निश्चिन्तभावसे अपनी प्रियतमा संयोगिताके साथ * आनन्दपूर्वक रहते थे; परन्तु कठोर कर्मलेखके अनुसार उनके सुखके दिन क्रमशः बीत गये; और धीरे उनका काल पूर्ण हुआ । उनको सुस्त और आराममें पड़ा हुआ जानकर शहाबुद्दीनने एक बहुत बड़ी सेनाके साथ पुनः भारतपर चढ़ाई की । उसका पुनः आना सुन और भारतभूमिको उसके आगमनसे कम्पायमान होते देखकर पृथ्वीराजकी आंखें खुल गईं और उन्होंने सोचा कि यह समय बड़े सङ्कटका है । अतएव उस सङ्कटसे छुटकारा पानेके लिये वे उचित उपाय करने लगे और यह सब वृत्तान्त उन्होंने समरसिंहको लिख भेजा । इससे पहले महाराज पृथ्वीराज जिसके प्रेममें पड़े आनन्द मना रहे थे उसीने सच्ची वीरनारीकी तरह उत्साहसे भरकर अपने प्यारे पतिको शीघ्र युद्धक्षेत्रमें जानेकी सलाह दी । इस विषयमें चन्दकविने जो कुछ लिखा है उसका ज्योंका त्यों अनुवाद नीचे प्रकाशित किया जाता है।

"जिस दिन शहाबुद्दीनने सेनाके सहित अन्तिम बार पृथ्वीराजके विरुद्ध युद्ध यात्रा की थी उस दिन रातके समय महाराजने एक भयङ्कर स्वप्न देखा था। उससे उनका हृदय कांप उठा था और मनमें उनके बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई थी। सुबह होनेपर उन्होंने रानी संयोगितासे उस स्वप्नका वृत्तान्त यों कहा,—

* संयोगिता कन्नौजके जयचन्दकी कन्या थी । जयचन्दने उसके स्वयम्वरके समय उस कालकी परिपाटीके अनुसार भारतवर्षके समस्त राजाओंको निमन्त्रित किया था, परन्तु पहलेका झगड़ा रहनेके कारण पृथ्वीराज और उनके मित्र समरसिंह उस स्वयम्वरमें नहीं गये । यह देख जयचन्दने उन दोनोंकी सोनेकी प्रतिमूर्त्तियां बनवाईं और उनमेंसे पृथ्वीराजकी मूर्त्तिको द्वारपालकी जगह द्वारपर रखवा दिया। स्वयम्वरके समय संयोगिताने उपस्थित किसी राजाके गलेमें वरमाल्य न पहनाकर पृथ्वीराजकी सोनेकी प्रतिमूर्त्तिके गलेमें माला पहनाई । पृथ्वीराज उस समय बनावटी वेषमें वहीं कहीं छिपे थे; सो यह वृत्तान्त जान वे तुरन्त राजकन्याको लेकर चलते हुए । उपस्थित राजाओंमेंसे किसीको उनके रोकनेकी हिम्मत नहीं हुई । देखिये "वीरपत्नी" उपन्यास ।

"रातको जब मैं गहरी नींदमें सोया था तब मैंने देखा कि रम्भाकी तरह रूपवाली एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीने कहींसे आकर बड़ी कठोरतासे मेरे हाथ पकड़ लिये। इसके बादही उसने तुमपर आक्रमण किया। तुमने अपने बचावके लिये बहुत चेष्टा करनी आरम्भ की। इतनेमें—ओफ!—राक्षसकी तरह एक बहुत बड़ा मतवाला हाथी सूंड़ उठाये हुए मेरी ओर दौड़ा ! डरके मारे मेरी आंखें खुल गईं। डरा और घबराया हुआ मैं चारों ओर देखने लगा; परन्तु कुछ दिखाई नहीं दिया। हृदय कांप उठा, सारे अङ्गके रोयें खड़े हो गये। "हर हर" शब्द करके मैं धीरेसे पलंगसे उठ खड़ा हुआ। देखो, अभीतक कलेजा कांप रहा है और अङ्ग अङ्ग रोमाञ्चित हैं। न जानें क्या होनेवाला है।"

सुनते सुनते संयोगिताके कमलसदृश मुखपर एक अपूर्व प्रकाश दिखाई दिया। उसने कोमल गम्भीर स्वरमें कहा—"हे चौहानकुलके गौरवसूर्य ! इस संसारमे आपके बराबर सुख सम्पद्का अधिकारी दूसरा कौन है? तौभी आपको शान्ति नहीं। आप भविष्यके लिये क्यों चिन्ता कर रहे हैं? प्राणप्यारे, जीवमात्रकी मृत्यु अवश्य होती है। इससे देवताभी छुटकारा नहीं पा सकते। नाथ! जिनका जीवन अच्छे कामोंमें जाता है या जो गौरवसे मृत्युको आलिङ्गन करते है, वे मरने पर भी सदा जीवित रहते है। मैं अबला हूं; मैं आपको अधिक क्या समझा सकती हूं। आप स्वार्थको तनिक भी अपने मनमें स्थान न दें; जिसमें कि इस नश्वर संसारमें सदा नाम बना रहे ऐसा उद्योग करें। अपनी कठोर तलवार लेकर आप शत्रुओं पर टूट पड़ें; मेरी चिन्ता न करें; मैं अभी आपके आधे अङ्गका काम करती हूं।

"महाराज पृथ्वीराजने सभामें आ और भट्टकवियोंको बुलाकर यह सब वृत्तान्त उनसे कहा। भट्टोंने मतलब समझाया; कुलगुरुने एक तावीज लिख दी और महाराजने वह तावीज अपने गलेमें पहन ली। इसके बाद ग्रहोंको अनुकूल करने के लिये दूधके एक सहस्र घड़े सूर्य और चन्द्रको अर्पण किये गये; दस दिक्पालोंको दस भैंसें भेंट की गईं और दीन दरिद्रोंको चांदी सोनेका दान किया गया। किन्तु रक्त वा दूध समर्पित करने अथवा दान ध्यानसे क्या कोई कर्मलेखको मिटा सकता है? यदि ऐसा होता तब तो नल और पाण्डवको कभी कठोर यन्त्रणा नहीं भोगनी पड़ती।

अस्तु, इस सङ्कटमें भी पृथ्वीराजने अपने प्रिय मित्र समरसिंहसे सहायता मांगी। महाराज समरसिंह कब निश्चिन्त रहनेवाले थे? अधिक देर न करके वे शीघ्र सेनाके सहित देहलीकी ओर यात्रा करनेकी तैयारियां करने लगे। इधर महाराज पृथ्वीराजने अपने सैनिकों और सामन्तोंको बुलाकर उनसे उपस्थित युद्धके विषयमें सलाह की। ऐसे भीषण विग्रहके समय भारतवर्षके राजाओंको उचित था कि वे सब मिलकर एक हो जाते, एकमत होकर मुसलमानोंको देशके बाहर निकाल भगाते, हृदयमें सच्चा स्वदेशानुराग रखकर पृथ्वीराजकी सहायता करते; परन्तु ऐसा तो हुआ नहीं,— उलटे यह हुआ कि उनमेंसे बहुतेरे चुपचाप बैठे रहे और कन्नौज पाटण तथा धाराके नृपतियोंने तो महा कुटिलता दिखाई, अर्थात् भीतर ही भीतर द्वेषभाव रखकर उन्होंने बड़ा हानिकारक काम कर डाला। अन्तमें उनके कुकार्योंका फल सबको भोगना पड़ा, सबके पांवोंमें मुसलमानोंकी अधीनतारूपी कठिन बेड़ी पड़ गई।

यात्राकी सब तैयारियां हो चुकीं। राज्यके काम अपने छोटे पुत्र कर्णको सौंप कर महाराज समरसिंह आत्मीय स्वजनों और सैन्य सामन्तोंके साथ देहलीकी ओर चल पड़े *। परन्तु चित्तौड़ नगर छोड़नेके समय सहसा उनका हृदय कांप उठा; मानों किसीने आकर धीरेसे उनके कानोंमें कह दिया कि "देखो, एक बार जी भरके चित्तौड़को देख लो; फिर तुमको यह नगर देखनेको नहीं मिलेगा।" महाराज समरसिंह सहसा चौंक उठे, पर उनका उत्साह कुछ कम नहीं हुआ; ईश्वरको स्मरण कर वे आगे बढ़े। चन्द बरदायीके "महासमर" नामक अन्तिम सर्गमें महाराजकी इस अन्तिम देहलीयात्राका हाल अच्छी तरह लिखा हुआ है। इधर पृथ्वीराजने अपने साथियोंके सहित साढ़े तीन कोस आगेसे सम्मानपूर्वक उनका स्वागत किया। उनको देखकर नगरके लोग बहुत आनन्दित हुए। देहलीमें घर घर आनन्दके बाजे बजने लगे, प्रत्येक गृहके द्वारपर मङ्गलकलश स्थापित किया गया और पताकाओं तथा फूलोंकी मालाओंसे सुशोभित होकर नगरीने

* छोटे कर्णके प्रति इतना अधिक अनुराग प्रकट करते देख जेठ कुमार कर्ण पितासे बहुत रुष्ट हुआ और कुछ साथियोंको लेकर वह वहांसे दक्षिण देशको चला गया। वहां जाकर उसने एक नये राज्यकी प्रतिष्ठा की।

अपूर्व सुन्दर मूर्त्ति धारण की। ब्राह्मण लोग पवित्र हृदयसे ईश्वरकी स्तुति करने और बन्दीजन वीररससे भरे मनोहर गीत गाने लगे। सो, वह दिन बड़े आनन्द-का दिन था। उस आनन्दके दिन बड़ी प्रसन्नतामें भरे हुए चित्तौड़ेश्वर समरसिंह-ने पाण्डवोंकी पवित्र भूमि देहलीमें प्रवेश किया। आज बहुत दिनोंके बाद फिर भाई बहिन, साले बहनोई और बन्धु बान्धव बड़े प्रेमसे एक दूसरेसे मिले। दोनों पक्षोंके सैन्य सामन्तोंने भी बहुत दिनोंके बाद परस्पर गले मिलकर स्वर्गसुखका अनुभव किया।

कुछ समयतक विश्राम करनेके बाद समरसिंहने पृथ्वीराजसे युद्धसम्बन्धी बातें करनी आरम्भ कीं और उनसे पूछा कि आपने अभीतक शत्रुओंके लिये कोई उपाय सोचा है या नहीं। इसके उत्तरमें उन्होंने जो बात सुनी उससे उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। महाराज पृथ्वीराजने कहा कि अभीतक हमने कुछ विशेष उपाय नहीं किया है। इसपर समरसिंहने मीठे शब्दोंमे उनकी भर्त्सना की और फिर दोनों आपसमें सलाह करने लगे कि अब क्या करना उचित है। ये सब बाते चन्दकविके ग्रन्थमें बड़े सुन्दर रूपमें वर्णित है।

अन्तमें युद्धकी सब प्रकारकी तैयारियां हो चुकीं। महाराज समरसिंहकी आज्ञाके अनुसार एक विशाल राजपूतदल प्रचण्ड पहाड़ी नदीकी तरह हुङ्कार करता हुआ युद्धक्षेत्रकी ओर बढ़ा। अस्त्र शस्त्रोंके झङ्कार, हाथी घोड़ोंके चीत्कार और राजपूतवीरोंके गम्भीर हुङ्कारसे पृथ्वी कांप रही थी। किस रास्तेसे किस ओर और किस प्रकार श्रेणीबद्ध चलना होगा, इन बातोंकी सलाह महाराज समरसिंह ने वीर राजपूत सैनिकोंको दी। मतलब यह कि उनकी सलाह लिये बिना महा-राज-पृथ्वीराजने कोई काम नहीं किया। समरसिंह जैसे साहसी, धीर और समर-कुशल थे, वैसेही वे शास्त्रविशारद धर्म्मनिष्ठ सत्यप्रिय और भले सलाहकार भी थे। स्यार वा किसी पक्षीकी चाल तथा दूसरे लक्षण देखकर कोई शाकुनिक वा ज्यो-तिषी जो बात नहीं बतला सकता था उसे वे अपने बुद्धिबलसे बतला देते थे। संग्रामके समय सेनाको उचित रीतिसे सजाना और उससे काम लेना जैसा वे जा-नते थे वैसा उस दलमें दूसरा कोई नहीं जानता था। महाराज समरसिंहके इन्हीं गुणोंके कारण क्या गिह्लोट क्या चौहान सभी सैनिक और सामन्त उनको बहुत

चाहते और मानते थे। वे भी उनसे स्नेह और आदरके साथ बातें करते और उनको बहुत प्रकारकी नीतिकी शिक्षा देते। उनकी शिक्षापूर्ण बातें सुनकर सब बहुत आनन्दित और प्रसन्न होते। महाकवि चन्दभट्टने यह बात मुक्तकण्ठसे स्वीकार की है कि उनके ग्रन्थमें जो नीतिशिक्षाकी बातें हैं उनमेंसे अधिकांश महाराज समरसिंहकी कही हुई हैं। इसके सिवा उनके ग्रन्थमें राजनीति, समाजनीति और धर्मनीतिकी जो बहुतसी छोट छोटी कहानियां रूपक और अलङ्कारकी रीतिपर लिखी हैं वे भी चित्तौड़के सुपण्डित महाराज समरसिंहजीकी ही कही हुई हैं।

पुण्यभूमि ब्रह्मावर्त्तकी प्रान्तवाहिनी पवित्र दृषद्वती † नदीके विशाल किनारे पर राजपूतों और मुसलमानोंमें तीन दिनतक घोर युद्ध हुआ। प्रथम दो दिनोंतक दोनों पक्षोंमेंसे किसीकी जीत हारके लक्षण नहीं दिखाई दिये। धीरे धीरे कालरूपी तीसरा दिन आया। मानों सूर्य भगवान् भारतवासियोंका अन्तिम गौरव देखनेके लिये पूर्वदिशामें प्रकट हुए। राजपूत लोग दृषद्वतीके पवित्र जलमें स्नान करके प्रात:कृत्यादि करने लगे। इधर महाराज पृथ्वीराज प्यारी रानी संयोगिताके पास खड़े थे। आज वह स्वयं अपने हाथोंसे उनको युद्धके साजोंसे सज रही थी। वर्म्म इत्यादिसे सजा चुकनेके बाद उसने पतिके कमरबन्दमें तलवार लटकाई; इतनेहीमें बड़े जोरका लड़ाईके नगाड़ेका शब्द सुन पड़ा। नगाड़ेकी प्रतिध्वनि समाप्त होते न होते राजपूतवीर बड़े शब्दसे गर्ज उठे। महाराजको विस्मय हुआ; उनको आशा नहीं थी कि विश्वासघाती शत्रु इतने सवेरे आक्रमण कर बैठेंगे; अतएव क्षणभर भी विलम्ब न करके वे बहुत शीघ्र रणक्षेत्रकी ओर चले। उस अन्तिम लड़ाईके दिन—भारतके उस अन्तिम गौरवके दिन—अद्वितीय वीर समरसिंह और उनके पुत्र कल्याणसिंह असंख्य शत्रुओंका संहार कर सच्ची वीरता और स्वदेशप्रेमका परिचय देते हुए अपने तेरह सहस्र राजपूत सैनिकों तथा प्रसिद्ध प्रसिद्ध सामन्तोंके साथ सदा सर्वदाके लिये समरभूमिमें सो गये। उस दिन—उसी बुरे दिन—दृषद्वतीके खूनमिले हुए जलमें भारतका गौरवरूपी सूर्य्य बहुत दिनोंके लिये डूब गया; भारतकी सब भविष्य आशाएँ लोप हो गईं।

† दृषद्वती (वर्त्तमान कग्गर)।

जिस समय समरसिंहकी पतिव्रता रानी पृथाने यह भयङ्कर सम्वाद सुना कि शत्रुओंके विश्वासघातसे उसके जीवनाधार समरसिंह समरक्षेत्रमें गिर पड़े, प्यारे भाई पृथ्वीराज बन्दी हुए और सहस्र सहस्र आर्यवीर कग्गरके किनारे वीरगतिको गये, तब आत्मीय स्वजन बन्धु बान्धव किसीके धीरज धरानेपर ध्यान न देकर उसने तुरन्त चितामें प्रवेश कर प्राणप्यारे पतिका साथ देना निश्चित किया। आज दृष-द्वतीका किनारा भीषण श्मशान बना हुआ था! जिस पवित्र तटभूमि पर बैठकर आर्यगौरव ब्रह्मर्षि लोग मधुर मनोहर स्वरोंमें सामवेदका गान करके देवताओंको आमन्त्रित करते थे, जिनके मनमुग्धकारी वेदगान पर विमोहित होकर पवित्र सलिला दृषद्वती नाच नाचकर तरङ्गोंके ताल देती हुई सुन्दर रूपमें बहती किनारों-को छूती हुई आनन्दपूर्वक चली जाती थी, वही तटभूमि—ब्रह्मर्षियोंकी वही तपोभूमि—आज भयानक श्मशान बनी हुई थी। असंख्य शृगाल, कुत्ते, कौवे और गिद्ध वहां विकट चीत्कार कर रहे थे! आज वहां जिस ओर देखिये उसी ओर नररक्त बह रहा था, लाश पर लाशें पड़ी हुई थीं। इस श्मशानके भीषण दृश्यको और भी भीषण करते हुए पिशाचोंकी तरह मुसलमान सिपाही पड़े हुए आर्यवीरोंका अस्त्र शस्त्र और माल असबाब लूटने लगे। हाय! इस समय उनको रोकनेवाला कौन था? कौन स्वदेशप्रेमके पवित्र मन्त्रसे उत्साहित हो तलवार खींचकर उनपर टूट पड़ता और उनको दूर हटाता? -कोई नहीं! प्रकृति चि ल्लाकर कहती है "कोई नहीं!"—भारतकी आर्यलक्ष्मी मुसलमानोंके यहां बेड़ियों से जकड़ी हुई बोली—"कोई नहीं।" हाय! प्यारी भारतभूमि आज अनाथिनी थी—पतिपुत्रविहीना थी,—आज वह दुष्ट विश्वासघाती बेईमान शत्रुओंके कठिन करोंमें कैद थी!

उस भीषण श्मशानभूमिके वीभत्स दृश्यको सौगुना बढ़ाता और आर्यवीरोंके कटे हुए सिरोंको रौंदता कुचलता हुआ विजयी शहाबुद्दीन देहलीकी ओर चला। उस समय देहलीका अन्तिम आर्यवीर वीरयुवक, रणसिंह साहसपूर्वक लड़कर रणक्षेत्रमें मारा गया। उसके मरतेही देहली नगरी रक्षकशून्य हो गई! तब उस रक्षकशून्य श्मशानसदृश नगरमें प्रवेश कर मुसलमानोंने पाण्डवप्रवीर युधि-ष्ठिरके पवित्र सिंहासन पर आरोहण किया इधर नामर्द जयचन्दने अपनी

विश्वासघातकता और स्वदेशद्रोहका उचित फल पाया। मुसलमानोंने उसके क-न्नौज राज्यपर भी अधिकार कर लिया। तब वह वहांसे नावपर चढ़कर भागा; परन्तु रास्तेमें नौका जलमें डूब गई और वहीं उसके प्राणोंका अन्त हो गया। उसी दिनसे हिन्दूविद्वेषी मुसलमानोंने भारतवर्षका पूरी तरह नाश करना आरम्भ किया। उनकी निष्ठुरताका परिचय आजतक मिलता है।

मुसलमानोंने भारतके शोभामय नगरों, गांवों और देवमन्दिरोंको चूर्णविचूर्णित कर डाला;—यहांका बेहिसाब धनरत्न उन्होंने लूट लिया; यहांके प्यारे पुत्रोंके हृदयका रक्त उन्होंने बेतरह बहाया। मानों समग्र भारतवर्ष एक भयानक श्मशान बन गया!—मानों एक विकट प्रेतिनी सर्वसंहारिणी मूर्त्ति धारणकर भारतके घर घर घूमने लगी!—जो पवित्र वस्तुएँ देवताओंके लिये थीं, ब्राह्मणोंके भयसे जिनको कोई छूने तक नहीं पाता था, पापी म्लेच्छोंने उनको तोड़फोड़ कुचल और रौंद डाला!—जो सुन्दर चीजें यहांकी शिल्पका बढ़िया नमूना थीं, उनको उन्होंने नष्ट भ्रष्ट कर डाला! मानों भारतमें प्रलय मचा हुआ था। यद्यपि उस समय देशकी यह दशा थी, पर राजपूतोंकी वीरताका बीज अबतक बचा हुआ था। समय पा-कर वह बढ़ा और शत्रुओंको उनके दुराचारका उसने उचित फल चखाया। आज देशकी वह दशा नहीं है जो पहले थी; आज उसकी बुरी दशा है; पर कौन कह सकता है कि भविष्यमें क्या होगा? पश्चिमी दुनियाके वीरता और स्वाधीनता के स्थान रोम और ग्रीस बुरी दशाको पहुँच गये थे; परन्तु उनका जातीय जीवन नष्ट नहीं हुआ था, इससे उन्होंने फिर उन्नति प्राप्त की। तो क्या भारत वी-रता, सभ्यता, स्वाधीनताका प्रधान स्थल-नहीं उठेगा; नहीं उन्नत होगा?—नहीं, यह विचार तो स्वप्नके समान है!

राजपूत स्वभावसे तेजस्वी होते हैं। उनका हृदय धीरता, गम्भीरता, सहनशी-लतादि वीरोचित गुणोंसे भूषित रहता है। इन्हीं धीरता गम्भीरता आदि गुणोंसे वे कठोरसे कठोर अत्याचार भी सह लेते हैं और बदला लेनेके लिये बड़े धीरभाव से उपयुक्त समयकी राह देखा करते हैं। कभी तो उन्होंने दृढ़ अध्यवसाय और प्रचण्ड वीरत्वसे शत्रुओंका एकदम नाश कर डाला है और कभी निरुपाय लाचार और निरवलम्ब होकर वे धीरतापूर्वक यह देखनेके लिये बैठे रहे हैं कि भाग्य कैसे

कैसे खेल खिलाता है। उनकी प्रचण्ड वीरताके प्रभावसे कितने मुसलमानराज्य विध्वस्त और चूर्णविचूर्णित हो गये; कितने मुसलमानवंश एकदम इस संसारसे लोप हो गये; परन्तु फिर भी कुछ फल नहीं हुआ। उन विध्वस्त और चूर्णविचूर्णित स्थानोंके फिर नये नये लोग अधिकारी हुए और उन्होंने भी वैसीही मूर्त्ति धारण की जैसे पहलेके लोग थे! अर्थात् ये भी वैसेही निष्ठुर, वैसेही हिन्दूविद्वेषी और वैसेही अत्याचारी थे। जैसा जङ्गलीपन इनके पहलेके मुसलमानोंमें था वैसाही इनमें भी उत्पन्न हुआ। दोनोंमेंसे कोई पाप पुण्य, धर्म अधर्म, न्याय अन्यायका भेद नहीं मानता था। व्यर्थ खून बहाना, दूसरोंको लूटकर अपना लाभ करना, इत्यादि कार्य उनकी समझमें बड़े पवित्र थे। हाय। इस दुर्नीति और अत्याचारसे मुसलमानोंने भारतकी पवित्र छातीपर कैसे कैसे उपद्रव मचाये थे! कितने हिन्दूराज्य और राजवंश उनके कारण लोप हो गये थे! उनकी प्राचीनता और प्रसिद्धि प्रकट करनेके लिये उनके नाम मात्र इस संसारमें रह गये हैं!

क्या संसारकी कोई दूसरी जाति वीरता, धीरता, महत्ता, तेजस्विता और सहिष्णुतामें राजपूतोंकी बराबरी कर सकती है? क्या दुनियाकी कोई दूसरी जाति राजपूतोंकी तरह सैकड़ों वर्षसे पराधीनताके बन्धनमें बंधे रहनेपर भी अपने पूर्वपुरुषोंकी सभ्यता तेजस्विता अथवा आचारव्यवहारकी रक्षा कर सकी है? नहीं! निस्सन्देह राजपूत स्वभावसे प्रचण्ड और निडर होते हैं, परन्तु आवश्यकता पड़नेपर वे बड़े धीर गम्भीर और सहनशील होकर कठोरसे कठोर कड़ाई भी सह लेते तथा बदला लेनेके लिये सुयोग और सुविधा ढूंढा करते हैं। आप संसारका इतिहास उलटकर देखिये; जितनी सहनशीलता आपको वीर राजपूतोंमें मिलेगी उतनी और किसीमें नहीं। निर्दय, निष्ठुर, पत्थरसे भी अधिक कठोर हृदयवाले शत्रुओंने राजस्थानके कितने राज्य नगर और गांव श्मशानके समान कर दिये थे; परन्तु फिर भी वीर राजपूतोंके जातीय जीवनका जोश ज्योंका त्यों स्थिर रहा और अवसर पाकर उन्होंने फिर उनको दबाया और अपना बदला लिया!—रोमनोंके एक ज़रासे आघातसे प्राचीन ब्रिट नगर एकदम बुरी दशाको पहुँच गया था। उस बुरी अवस्थासे अच्छी अवस्थामें आने तथा अपने प्राचीन धर्म और रीतिनीतिका उद्धार करनेकी वहांके निवासियोंने बहुत चेष्टा की थी;

परन्तु उनकी सब चेष्टा निरर्थक और व्यर्थ हुई; तुरन्तही दिनामरोंने आकर उन अभागोंको नई बेड़ियोंसे जकड़ लिया; अपरसे वह दशा हुई इन जीती और हारी हुई जातियोंके संयोगसे जो दोगली जाति पैदा हुई उसको नार्मन वीरोंने बेतरह परास्त कर डाला। सो, एकही युद्धमें उनके भाग्यका फैसिला हो गया। उनकी जातीयता, उनकी जन्मभूमि, सब उनसे अलग हुई; उनका धर्म्म और उनके रीतिरिवाज जीतनेवालोंके धर्म्म और रीतिरिवाजमें मिलकर लुप्त हो गये! पर जरा आर्यवीर राजपूतोंसे तो उनकी तुलना कीजिये! वे किसी प्रकार इनकी समानता नहीं कर सकते। वीर राजपूत अपने कितनेही राज्योंसे एकदम अलग कर दिये गये; तथापि कभी उन्होंने अपने पूर्वपुरुषोंके पवित्र सनातन धर्म्म और रीतिनीतिको नहीं त्यागा। अस्तु।

जिस दिन वीरवर समरसिंह स्वदेशहितका काम करते करते युद्धस्थलमें वीरगतिको गये उसी दिनसे मेवाड़के प्राचीन गौरव, प्राचीन धर्म्म और प्राचीन स्वाधीनताकी रक्षा करनेके लिये उनके वंशधरोंको अपने हृदयका रक्त बराबर बहाना पड़ा। महाराजकी मृत्युके बाद कुछ दिनतक उनकी बड़ी रानी कर्म्मदेवीने राज्य कार्य्य स्वयं किये; जबतक राजकुमार कर्ण * बालिग नहीं हुआ तबतक रानीहीको शासनभार अपने ऊपर रखना पड़ा। रानी कर्मदेवीका जन्म पाटणके राजकुलमें हुआ था। जैसे वीरकुलमें वह जन्मी थी उससे अधिक वीरसे उसका विवाहसम्बन्ध हुआ था। वह स्वयं वीरनारी थी। अपने पिताके, अपने पतिके और अपने मान सम्मानकी रक्षा करनेमें उसने कोई त्रुटि नहीं की। पुत्रकी छोटी अवस्थामें जिस समय वह राज्यकी देखभाल स्वयं करती थी उस समय उसने बड़ी वीरता प्रकट की थी। उसके अपूर्व वीरत्वके प्रभावसे कुतुबुद्दीन हारा था और बड़ी कठिनतासे अपने प्राण बचाकर रणक्षेत्रसे भाग सका था। आक्रमण करनेके अभिप्रायसे सेना लिये हुए वह मेवाड़की ओर चला। कर्म्मदेवीने भी उसके आनेका समाचार

* महाराज समरसिंहके कई पुत्र थे। सबसे बड़ा कल्याणराय पिताके साथ लड़ाईमें मारा गया। दूसरा कुम्भकर्ण जन्मभूमि छोड़कर दक्षिणावर्तको चला गया। तीसरेने भारतके उत्तरप्रदेशमें जाकर गोरखकुलकी प्रतिष्ठा की। कर्ण सबसे छोटा था।

हुआ; उस समय क्षुधा और क्रोधके मारे उसके सारे शरीरमें मानों आगसी लग गई। तुरन्तही उसने कुतुबुद्दीनको दुष्टताका फल चखानेके लिये अपने सैन्य सामन्तोंको बुलाया और लड़ाईकी तैयारियां करनेकी आज्ञा दी। अपनेको भी उसने युद्धके साजोंसे सज्जित किया। जो शरीर रूईसे भी अत्यन्त कोमल और सरस था उसपर कठोर शिरस्त्रवस्त्र चढ़ाई गई; जिन नर्म और नाजुक हाथोंमें जड़ाऊ गहने पहने जाते थे उनमें तीखी तलवार दिखाई दी। सौन्दर्यमयी सुकोमल राजपूत रमणीने घोड़ेपर सवार होकर रणचण्डीका रूप धारण किया। ९ क्षत्रिय राजे और 'रावत' उपाधिधारी ११ सामन्त युद्धक्षेत्रकी ओर उसके साथ चले। आमेरके निकट कुतुबुद्दीनकी सेना दिखाई दी। तत्कालही कर्मदेवीने वहीं ठहरकर अपने सैनिकोंको युद्धकी प्रतीक्षा करनेकी आज्ञा दी। क्रमशः दोनों दलोंका सामना हुआ; क्रमशः दोनोंमें घोर युद्ध आरम्भ हुआ। मुसलमानोंका प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन लड़ाईमें घायल हुआ; उसकी सेना छत्रभङ्ग होकर इधर उधर भाग गई और अन्तमें बड़ी कठिनाइयोंसे वह अपने जीवनकी रक्षा कर सका।

कर्णकी नाबालिगी दूर हुई; सम्वत् १२४९ (सन् ११९३) में उसने पिताके सिंहासनका अधिकार प्राप्त किया; परन्तु ईश्वरेच्छासे उसके वंशधर मेवाड़में प्रतिष्ठित नहीं रह सके ॐ। प्रायः सभी भट्टग्रन्थोंमें लिखा है कि कर्णके माहुप और राहुप नामक दो पुत्र थे; परन्तु विशेष विचार करके पता लगानेसे यह बात भूलसे भरी मालूम होती है।

महाराज समरसिंहके एक भाई थे; उनका नाम सूर्यमल था। इन सूर्यमलके एक पुत्र था जिसका नाम भरत था। आगे कहा जा चुका है कि कर्ण समरसिंहका पुत्र था। अस्तु चौहानवंशकी एक राजकुमारीके साथ कर्णका विवाह हुआ; उसके गर्भसे माहुपकी उत्पत्ति हुई। कर्णके सिंहासनपर बैठनेपर सरदारोंने ढङ्ग करके भरतको मेवाड़से हटा दिया। तब वह सिन्धुदेशको चला गया। सिन्धुराज्यके अन्तर्गत आरोर नामक नगरका अधिकारी उस समय एक मुसलमान था। भरतने उससे वह नगर लेकर पुगलके भट्टीनरेशकी कन्याके साथ विवाह कर लिया।

ॐ कर्णका श्रीवाण नामा एक पुत्र था। उसने व्यापार करना आरम्भ किया था।

पश्चात् उन दोनोंके संयोगसे राहुपकी उत्पत्ति हुई । कर्ण भरतको बहुत चाहता था; यहांतक कि अपने पुत्रसे भी अधिक उससे स्नेह रखता था। जिस दिन भरत उसका राज्य छोड़कर चला गया उस दिनसे उसे बहुत कष्ट जान पड़ने लगा। इसपर एक और दुःख पहुँचानेवाली बात हुई। उसका पुत्र माहुप एकदम बेकाम था; वह पिताका घर छोड़कर सदा ननिहालमें रहा करता था। एक तो भरतके न रहनेका शोक थाही, दूसरे पुत्रकी अयोग्यताका उसे दुःख था । अन्तमें एक दिन इस संसारसे कर्णका सम्बन्ध छूट गया ।

कर्णके एक कन्या थी । उसको उसने झालावाड़के शनिगुरुवंशी सरदारको समर्पण कर दिया था। इस राजकुमारीके गर्भसे रणधवल नामक एक पुत्र जन्मा। शनिगुरु सरदारकी बड़ी इच्छा थी कि उनका पुत्र रणधवल चित्तौड़के सिंहासन का अधिकार प्राप्त करे । बहुत दिनोंसे वह अपनी इस साधनाके पूर्ण करनेका सुयोग ढूंढ़ रहा था, आज उसे इसका अवसर मिला। कर्णका देहान्त हो जानेके बाद उसका सिंहासन शून्य था। उसका अयोग्य पुत्र माहुप जान सुनकर भी उस सिंहासनका अधिकार प्राप्त करने नहीं आया । अवसर देख झालावाड़के क्रूर सरदारने चित्तौड़के प्रधान प्रधान लोगोंका बध करके अपने पुत्रको उस शून्य सिंहासन पर स्थापित किया। क्या गिह्लोटकुलकेसरी वीरवर बप्पारावलके स्वर्णसिंहासनका अधिकार एक सामान्य सरदार प्राप्त करेगा?—यदि ऐसा होगा तब तो "गिह्लोट" नाम एकदम मेवाड़से लोप हो जायगा!—यह चिन्ता राजपरिवारके एक बूढ़े भट्टके मनमें उत्पन्न हुई। आगे होनेवाले अनर्थको रोकनेके लिये वह वृद्ध भट्ट भरतके निकट गया और सब हाल कहके बोला कि आप शीघ्र मेवाड़में चले आइये। भरतने भी विलम्ब न करके अपने पुत्र राहुपको सिन्धुदेशकी सेनाके साथ तुरन्त चित्तौड़की ओर भेजा। इधर सरदार इन सब बातोंसे अवगत हो राहुपका अभिप्राय व्यर्थ करनेके लिये सेना लेकर आगे बढ़ा। रास्तेहीमें पाली नामक स्थान में दोनों दलोंका सामना हुआ। लड़ाई हुई और राहुप जीता। यह शुभ समाचार सुनतेही चित्तौड़के सामन्त और सरदार बड़ी प्रसन्नतासे आकर उसकी विजयपताका के नीचे एकत्रित हुए और उद्धारकर्त्ता मानकर उसको चित्तौड़के सिंहासन पर उन्होंने अभिषिक्त किया। राजपदपर प्रतिष्ठित होतेही राहुपने अपने पिता और माता (रत्नदेवी) को लानेके लिये चित्तौड़से सिन्धुदेशकी ओर आदमी भेजे।

संवत् १२५७ (सन् १२०१) में राहुपने चित्तौड़के सिंहासनपर आरोहण किया। राजपद पानेके कुछही दिन बाद मुसलमान सेनापति शमसुद्दीनसे उसकी घोर लड़ाई हुई। यह लड़ाई नगरकोटमें हुई और इसमें राहुपकीही जीत हुई। राहुपके समयमें मेवाड़राज्यमें दो बड़े बड़े परिवर्त्तन हुए। इससे पहले मेवाड़का राजकुल "गिह्लोट" नामसे जाना जाता था, परन्तु महाराज राहुपने इसकी जगह सिसोदीय वा शिशोदीय * नाम प्रचलित किया। दूसरा परिवर्त्तन यह हुआ कि गिह्लोट नृपतियोंकी उपाधि अबतक "रावल" थी, परन्तु राहुपके समयसे वे "राणा" कहे जाने लगे। जिस रीतिसे यह नया नामकरण हुआ उसका हाल आगे लिखा जाता है,—

मुन्दरका पुरीहार मकुल राणा राहुपसे बड़ी शत्रुता रखता था। उसकी श त्रुतासे विवश हो आखिर राहुपको सेना लेकर उसके राज्यपर आक्रमण करना पड़ा। राहुपने उसे पराजित कर उसीकी राजधानीमें उसे कैद किया। मकुल राणाने अपना छुटकारा करनेके लिये अपनी उपाधि और गदवार नामक समृद्ध राज्य विजयी राहुपको सौंप दिया। तबसे गिह्लोट नृपति 'राणा" कहे जाने लगे। ३८ वर्ष राज्य करके राहुपने इस संसारसे मुंह मोड़ा। मेवाड़राज्यके खोये हुए गौरवका उद्धार करके कठिन सङ्कटके समय उसने जिस खूबीसे राज्यकार्य चलाया उससे उसके राजोचित गुणोंका विशेष परिचय पाया जाता है।

राहुपके ९ पीढ़ी बाद राणा लक्ष्मणसिंहकी उत्पत्ति हुई। ये ९ पीढ़ियां ५० वर्षके अन्दरही हो गईं। ९ मेंसे ६ राणाओंने मुसलमानोंके अपवित्र ग्राससे पवित्र गयातीर्थके बचानेमें युद्धक्षेत्रमें प्राण त्याग किये। इन छःहोंमे जो महापुरुष अपने हृदयका रक्त बहाकर पवित्र सनातनधर्म्मकी रक्षा कर सका था उसका नाम सूर्य्यमल्ल था। वीर राजपूतोंका धर्म्मानुराग और आत्मोत्सर्ग अपनी आंखोंसे देखकर मुसलमानोंको बहुत भय और आश्चर्य मालूम हुआ था; इसी कारण महा-

* शिशोदा नामक एक नगरसे "शिशोदीय" शब्दकी उत्पत्ति हुई। शिशोदा नगर मेवाड़के पश्चिम भागमें पहाड़ोंमे प्रतिष्ठित किया गया था। कहा जाता है कि मेवाड़के एक निकाले हुए नृपतिने बहुत देरके बाद जिस जगह एक शश (खरहा) मारा था उसी जगह उसने शशदा (शिशोदा) नामक नगर बसाया।

राज सूर्यमलके देहान्तके बाद बहुत दिनोंतक उन्होंने सनातन हिन्दूधर्मके प्रति आक्रमण नहीं किया। तबसे अलाउद्दीनका शासनकाल आरम्भ होनेतक आर्य लोग निश्चिन्त और निष्कण्टक थे। परन्तु इस शान्तिके समयमें एकबार चित्तौड़ नगरी सीसोदीयकुलके हाथसे निकल गई थी। भट्टग्रन्थोंमें लिखा है कि राहुप और राणा लक्ष्मणसिंहके बीचके भुवनसिंह† नामक एक सीसोदीय नृपतिने अपने पूर्वजोंकी भूमि चित्तौड़ नगरीका उद्धार करके राणा उपाधि धारण की थी;—इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि उससे पूर्व चित्तौड़का अधिकारी दूसरा कोई था। महाराज राहुप और लक्ष्मणसिंहके बीचमें जो ९ राजे हुए थे उनके समयकी केवल उक्त दो विशेष घटनाओंका हाल पाया जाता है। इसके सिवा जो हाल मिलता है उससे यही प्रमाणित होता है कि उनको अनेक लड़ाई झगड़ोंका सामना करना पड़ा था। इसके अतिरिक्त वर्णनके योग्य कोई दूसरी बात न पाकर हम मेवाड़के इतिहासका एक प्रधान वृत्तान्त लिखते हैं। वह वृत्तान्त बड़ाही मनोरम और सुन्दर है।

पाँचवाँ अध्याय।

राणा लक्ष्मणसिंह;—अलाउद्दीनका चित्तौड़पर आक्रमण करना और उसकी विश्वासघातकता;—भीमसिंहका उद्धार करनेके लिये चित्तौड़के सरदारोंका तलवार पकड़ना;—राणाजी तथा उनके पुत्रोंकी अपूर्व वीरता;—तातारियोंका उपद्रव;—राणा अजयसिंह;—हम्मीर;—हम्मीरका चित्तौड़पर अधिकार करना;—मेवाड़की प्रसिद्धि और उन्नतिका हाल;—क्षेत्रसिंह;—लाखा।

राणा लक्ष्मणसिंह संवत् १३३१ (सन् १२७५) में अपने पिताके राज्यपर अभिषिक्त हुए। यह अवश्य कहना पड़ेगा कि इनके राजत्वकालमें चित्तौड़के लिये एक नया युग उपस्थित हुआ। क्योंकि जो चित्तौड़नगरी अबतक स्वाधीनता और स्वतन्त्रताके दुर्जय दुर्गकी तरह खड़ी थी, जिस चित्तौड़की पवित्र भूमिको अबतक किसी दूसरी जातिने स्पर्श नहीं किया था, उसी चित्तौड़ उसी पवित्र पुरीको

† भुवनसिंहके दूसरे पुत्र चन्द्रने चम्बल नदीके किनारे कुछ भूमि प्राप्त की थी। उस स्थानका नाम रामपुर था। इसी चन्द्रके वंशधर चन्द्रावत कहे जाने लगे।

दुष्ट अलाउद्दीनने इनके समयमें विदग्ध किया, तोड़फोड़ डाला और वहांके निवासियोंको बहुत कष्ट पहुँचाया। अलाउद्दीनने चित्तौड़पर दो बार आक्रमण किया। पहली बार तो मेवाड़के प्रधान प्रधान वीरोंने अपने हृदयका रक्त बहाकर,— अपने प्राण देकर— मुसलमानोंके अपवित्र स्पर्शसे उसे बचा लिया; परन्तु दूसरी बारकी चढ़ाईमें चित्तौड़की शोभा एकबारही जाती रही।

लक्ष्मणसिंहने बहुत थोड़ी उमरमें पिताकी गद्दी प्राप्त की थी। उनकी नाबालिगीकी अवस्थामें उनके चचा भीमसिंह राज्यकार्य देखते थे। भीमसिंहका विवाह विख्यात सुन्दरी पद्मिनीसे हुआ। पद्मिनी चौहानकुलमें उत्पन्न हुई थी, उसके पिताका नाम हम्मीरशङ्क था और उसकी जन्मभूमि सिंहल थी। उसकी सु-रताही सीसोदीय कुलके अनर्थका प्रधान कारण हुई। उसके अप्रतिम रूपकी इतनी प्रसिद्धि थी कि यदि कोई भारतकी सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्रीकी बात कहे तो समझो कि वह उसीके विषयमें कह रहा है। इस पवित्र नामका व्यवहार राजपूतोंके वंशमें बहुत दिनोंतक हुआ। इस समय भी बहुतेरे राजपूत अपनी कन्याओं और बहिनोंका नाम पद्मिनी रखते हैं। पद्मिनीके सौन्दर्य, गुण, महिमा, गौरव और मृत्यु तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी अनेक बातें राजपूतानेमें कहानियोंकी तरह घर घर प्रचलित हैं। भट्टकवियोंने लिखा है कि अलाउद्दीनने पद्मिनीकेही पानेकी अभिलाषासे चित्तौड़पर चढ़ाई की थी। कहा जाता है कि चित्तौड़ नगरीको घेरकर अलाउद्दीनने यह सूचना दी थी कि पद्मिनीके मिलतेही हम यहांसे अपने प्रान्तको चले जायगे, परन्तु बहुतसे ग्रन्थोंके देखनेसे पता लगता है कि बहुत दिनों तक नगर घेरे रहनेके बाद जब उसने देखा कि कुछ फल नहीं होता तब उसने ऐसी सूचना प्रकाशित की थी। उसकी ऐसी गन्दी सूचना सुनकर वीर राजपूत क्रोध और घृणासे लाल हो उठे। पूजनीया राजलक्ष्मी मुसलमानोंके अधिकारमें जायगी! देवकन्याका उपभोग राक्षस करेंगे! इस अपमानित करनेवाले घृणित प्रस्तावका अनुमोदन कौन कर सकता था? क्या राजपूत वीर नहीं थे? उनका शरीर क्या निर्जीव मांसपिण्ड मात्र था? क्या उनकी नसोंमें पवित्र आर्यरक्त प्रवाहित नहीं होता था? क्या वे इस घृणित प्रस्तावको स्वीकार कर सकते थे?— नहीं, कदापि नहीं। अधिक क्या, दुष्ट अलाउद्दीनका मतलब सिद्ध नहीं होने

पाया। तौभी पद्मिनीको वह भूल नहीं सका। अन्तमें उसने कहा कि यदि मुझे आईनेमें पद्मिनीकी छाया दिखा दी जाय तो मैं चित्तौड़ छोड़कर चला जाऊंगा। भीमसिंहजीने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

अलाउद्दीन जानता था कि राजपूत झूठे वा विश्वासघाती नहीं होते। इसी विश्वासपर भरोसा रख वह केवल कुछ थोड़ेसे शरीर रक्षक लेकर चित्तौड़में गया और दर्पणमें पद्मिनीकी छाया देखकर लौट आया। जिस दुष्ट शत्रुने चित्तौड़में महा अनर्थ मचाया था, जिसने पवित्र राजपूत वीरोंके मुखपर कलङ्कालिमा पोतनेका उपाय किया था; आज वही दुष्ट अतिथि था। इसीसे वह निर्भय निःसङ्कोच चित्तौड़पुरीमें प्रवेश कर सका। वीरहृदय तेजस्वी राजपूतनरेशने उसके अपराधकी चिन्ता न करके मित्रभावसे उसकी अभ्यर्थना की। जबतक वह अतिथिकी तरह था तबतक शत्रु होने पर भी उसके साथ मित्रसे अधिक बढ़कर बरताव किया गया। अतिथिका सत्कार करना चाहिये, यही समझकर भीमसिंहने उसका आदर किया और लौटनेके समय दुर्गके बाहरतक वे उसे पहुँचाने गये। मार्गमें अलाउद्दीन अपनी भूल स्वीकार कर उनसे क्षमा मांगने लगा। इसी प्रकार बातें करते करते दोनों बहुत दूर निकल गये, इतनेमें पासके किसी गुप्त स्थानसे कुछ शस्त्रधारी मुसलमान सिपाही भीमसिंहपर सहसा टूट पड़े और उनको बांधकर वे अपने पड़ावमें ले गये। हाय! विश्वासघाती अलाउद्दीनने एक वीर राजपूतके पवित्र और प्रगाढ़ विश्वासका इस प्रकार बदला चुकाया! सरलहृदय भीमसिंह धोखेमें पड़कर फँस गये। तब अलाउद्दीनने कहा कि "पद्मिनी मिले तो मैं भीमसिंहको छोड़ दूं; नहीं तो नहीं।"

बहुत शीघ्र यह शोचनीय समाचार चित्तौड़में चारों ओर फैल गया चित्तौड़के लोग बड़ी निराशा और विचारमें पड़ गये। तो क्या भीमसिंहका बचाव करनेके लिये पद्मिनीको वे त्याग देते?—या वीरतापूर्वक लड़कर उनको छुड़ा लाते? परन्तु यदि उनका उद्योग सफल न होता तो? यदि प्राण देकर भी वे भीमसिंहको छुड़ा न सकते तब? तो आखिर वे क्या करते? क्या पद्मिनीको मुसलमानोंके हाथ सौंप देते!?—राणाके सरदारोंमें परस्पर इसी तरहकी बातें होने लगीं इधर पद्मिनीको भी यह बात मालूम हुई। स्वयं उसने इस विषयमें क्या सोचा है

यह जाननेके लिये सब लोग उत्कण्ठित हुए। तुरन्त सबने सुना कि भीमसिंहको कैदसे छुड़ानेके लिये पद्मिनी अलाउद्दीनके पास जानेको तैयार है। यह समाचार सुनकर चित्तौड़वासियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ।—वे विचारने लगे कि क्या पद्मिनी सचमुच अपना स्वर्गीय सतीत्व रत्न खो देगी? पद्मिनीने उस समय लोगोंपर यह प्रकाशित नहीं किया कि उसका गूढ़ मतलब क्या है। उसके पिताके राज्यके दो सम्बन्धी उस समय चित्तौड़में वर्त्तमान थे। उनमें एक उसका गोरा नामक चचा था, दूसरा उसका भाई जिसका नाम बादल था। ये दोनों जैसे वीर थे वैसेही समझदार भी थे। पद्मिनीने इनको अपने पास बुलाकर इनसे कुछ गुप्त सलाह की। इस सलाहका यही उद्देश्य था कि किस तरह निष्कलङ्क रहकर वह पतिका उद्धार कर सकती है। बड़े सन्तोषकी बात है कि उसका उद्देश्य सफल हुआ। उसके चचा तथा भाईने जो उपाय स्थिर किया उससे उसके पातिव्रत धर्म्ममें जरा अन्तर भी नहीं आया और भीमसिंहका छुटकारा भी हो गया।

सलाहके बाद तुरन्त अलाउद्दीनके यहां एक दूत भेजा गया। दूतने उसके पास पहुँचकर बड़े सम्मानसे कहा, "सम्राट्! जिस दिन आप चित्तौड़का घेरा उठाकर सैनिकोंको अलग करदेंगे उसी दिन महारानी आपसे आ मिलेंगी। परन्तु एक बात है;—आप स्वयं सम्राट् हैं और पद्मिनी भी माननीय राजपूत कुलकी स्त्री हैं; अतएव जिसमें कि उचित सम्मानमें किसी तरहकी कमी न हो ऐसे प्रबन्ध से वे आपसे मिलने आवेंगी। वे सब राजपूत स्त्रियां जो उनकी बचपनकी साथिन हैं और उनके देखे बिना एकक्षण रह नहीं सकतीं, उनसे जन्मभरके वास्ते बिदा होनेको यहांतक आवेंगी। उनके अतिरिक्त, वे क्षत्रिय महिलाएँ भी आवेंगी जो उनके साथ देहलीतक आयँगी। वे सब भले कुलकी हैं, कभी घरके बाहर नहीं निकली हैं; आज इसलिये कि आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन न हो वे अपनी सदाकी बातका विचार न करके इतनी दूर आ रही हैं। किन्तु, सम्राट्! आपसे हम लोगोंका केवल इतनाही निवेदन है कि ऐसा न हो कि कोई बात उनके मानके विरुद्ध हो। आप इस बातका ध्यान रखियेगा कि आपके आदमियोंमेंसे कोई उनकी डोलियोंके पास न जाने पावे। क्योंकि यदि ऐसा होगा तो अन्तःपुरका नियम भङ्ग हो जायगा।"—अलाउद्दीनने ये बातें स्वीकार कीं। आशाके फेरमें पड़-

कर उसने एकबार भूलकर भी इस बातका विचार नहीं किया कि हिन्दू स्त्रियां अपने हाथसे अपने कलेजेमें छुरी मारकर प्राण त्याग कर सकती हैं, प्रसन्नतापूर्वक जलती हुई आगमें भस्म हो सकती हैं, परन्तु प्राण रहते पवित्र सतीत्व धर्म्म नहीं बिगाड़ सकतीं ।

अस्तु, धीरे धीरे निश्चित दिन आ गया । एकदम ७०० डोलियां चित्तौड़ नगरसे निकलकर अलाउद्दीनके शिविरकी ओर बढ़ती दिखाई दीं । छः सैनिक पुरुष बनावटी वेष बनाये अपने अस्त्र शस्त्र छिपाये हरेक डोलीको कन्धों पर लिये हुए थे और हरेक डोलीके अन्दर चित्तौड़का एकएक वीर साहसी पुरुष चुपचाप बैठा हुआ था । थोड़ी देरमें सातोंसौ पाल्कियां अलाउद्दीनके पड़ावके सामने रखी गईं; फिर एकएक करके वे तम्बूके एक बड़े घेरेमें पहुँचाई गईं । भीमसिंहको केवल आध घण्टेका अवकाश दिया गया कि वे अपनी पत्नीसे अन्तिम भेंट कर आवें । वे उन पाल्कियोंके निकट गये । तुरन्तही उनके सैनिक साथ-आमीसे उनको एक पाल्कीके अन्दर बैठाकर दूसरी बहुतसी पाल्कियोंके साथ शिविरके बाहर ले चले । शेष सब पाल्कियां वहीं रखी रहीं । धीरे धीरे आध घण्टा बीत गया, परन्तु भीमसिंह नहीं आये । क्रमशः अलाउद्दीनके मनमें ईर्षा उत्पन्न हुई और ईर्षाके साथही सन्देह और फिर सन्देहके बादही क्रोध उत्पन्न हुआ । वह भीमसिंहको छोड़ना नहीं चाहता था, अतएव अधिक विलम्ब न करके उस घेरेके निकट पहुँचा जिसमें पाल्कियां रखी थीं । परन्तु ज्योंही वह वहां पहुँचा त्योंही डोलियोंके पर्दे उलट तलवार खींचकर राजपूतवीर उसपर टूट पड़े। तथापि अलाउद्दीन अकेला नहीं था, वहीं पर दोनों दलोंमें लड़ाई आरम्भ हुई । इधर भीमसिंहको पकड़नेके लिये (जो चुपचाप निकल गये थे) एकदल मुसलमानी सेना चित्तौड़की ओर दौड़ी; परन्तु वह उनको पा नहीं सकी। भीमसिंहके लिये एक तीव्रगामी घोड़ा पहलेहीसे तैयार था; उसीपर सवार होकर वे निर्विघ्न चित्तौड़दुर्गमें पहुँच गये। मुसलमानी सेनाने दुर्गद्वारपर पहुँचकर आक्रमण किया। चित्तौड़के प्रधान प्रधान वीर लड़नेके लिये आगे आये । उस भीषण युद्धमें वीरवर गोरा और उसके भतीजे बादलने सबसे अधिक वीरता दिखाई ।

बारह वर्षके राजपूतबालक बादलका अद्भुत रणकौशल देखकर शत्रुओंको

बड़ा आश्चर्य हुआ। उस वीर बालककी तलवारके आघातसे न जाने कितने अभागे यमपुरीको पहुँच गये। उसकी अपूर्व काटछांट देखकर न मालूम कितने अभिमानी युद्धवीर हिन्दू और मुसलमानोंको चकित होना पड़ा। उसके कारण राजपूतोंका उत्साह बहुत बढ़ गया। इस लड़ाईमें वीरवर गोराका शरीरान्त हुआ और कितनेही राजपूत वीर उसीकी तरह वीरगतिको गये। अन्तमें कुछ थोड़ेसे वीरोंके साथ बादल चित्तौड़को लौटा। अलाउद्दीनकी लालसा किसी तरह पूरी नहीं हुई, उसको कुछ कालके लिये लड़ाई रोक देनी पड़ी।

सो वीरवर गोराने समरभूमिमें अपने प्राण त्याग किये और उसका भतीजा बादल लहूलुहान तथा घायल होकर उसकी पत्नी (अर्थात् अपनी चची) के पास पहुंचा। उसको अकेले लौटते देखकर उस तेजस्विनी राजपूत रमणीका हृदय शोकसे भर गया; तथापि यह सोचकर उसने धैर्य धारण किया कि उसके पतिने स्वदेशकी रक्षामें अपना जीवन विसर्जन किया। बादलको चुपचाप खड़ा देखकर रुँधे हुए गलेसे धीमे स्वरमें उसने कहा—"बादल! तुम्हें कुछ नहीं कहना पड़ेगा; मैं सब समझ गई। इस समय मेरा केवल इतनाही प्रश्न है कि मेरे प्राणेश्वरने युद्धमें किस तरहकी वीरता प्रकाश कर प्राण त्याग किये? बोलो बेटा बादल। इतनेहीसे मुझे धैर्य होगा।" बालक बादलकी आंखोंसे आंसू गिरने लगे; उसके घायल शरीरसे और भी थोड़ा थोड़ा खून निकल आया! आखिर वह बोला—"मां, मेरे चचाने जैसी वीरता दिखाई उसका हाल मैं क्या कहूं। सच तो यह है कि एक उन्हींके वीरविक्रमसे सीसोदीय कुलके मानकी रक्षा हुई। उन्होंने अकेले न मालूम कितने शत्रुओंके सिर भुट्टेकी तरह उड़ाकर फेंक दिये। मैं तो केवल उनके पीछे पीछे घूमता था और जो दो चार शत्रु उनसे बचते थे उनका संहार करता था। उन्होंने बड़ी वीरतासे लड़कर प्राण त्याग किये हैं। किसीका मृतशरीर तो तकियेकी तरह उनके सिरके नीचे पड़ा है, किसीका लोथ बगलमें, किसीका पैरके पास,—मानों असंख्य मृत वीर रक्षककी भांति उनके चारों ओर पड़े हैं। इतना सुन लेनेके बाद वीरवर गोराकी विधवा पत्नीने फिर पूछा,—"कहो वत्स बादल! फिर कहो—मेरे स्वामीने युद्धमें कैसा वीरत्व प्रकट किया?" बादल बोला—"मां, क्या कहूं उनका अद्भुत युद्धकौशल देखकर शत्रु स्वयं उनकी प्रशंसा

करती थे।" इसके उपरान्त सती साध्वी गोराकी पत्नीने सबसे विदाई ली और यह कहकर कि "देर करनेसे प्राणप्यारे मेरी भर्त्सना करेंगे" प्रसन्नतापूर्वक अग्नि में प्रवेशकर अपने प्राण त्याग किये।

मेवाड़के लोग प्राय: "चित्तौड़ नाश करनेका पाप लगे" कहकर कसम खाया करते हैं। वे कहते हैं कि चित्तौड़पुरी साढ़ेतीन बार शत्रुओंके द्वारा नष्ट भ्रष्ट हुई थी। उनके कथनके अनुसार यह साढ़े-तीसरा अवसर था; क्योंकि इस अवसर पर चित्तौड़ दुर्ग शत्रुओंके द्वारा अधिकृत और विध्वस्त नहीं हुआ; परन्तु वहांके बड़े बड़े वीर लड़ाईमें मारे गये थे और सीसोदीय कुलको विशेष हानि हुई थी। "खुमानरासो"में इस युद्धका विवरण बड़ी ओजस्विनी भाषामें लिखा हुआ है। अस्तु, इस लड़ाईसे शान्ति मिलती न मिलती मुसलमानोंने फिर चित्तौड़पर आक्रमण किया। इस आक्रमणसे चित्तौड़पुरीकी कौन रक्षा करता? कौन स्वदेशप्रेमसे उत्साहित होकर शत्रुओंका आक्रमण रोकनेके लिये समरभूमिमें जाता?—जो पराक्रमी वीर चित्तौड़के भूषण थे वे तो गत लड़ाईमें वीरगतिको प्राप्त हो चुके थे; एक प्रकार चित्तौड़ इस समय शून्य था। ऐसी भयानक अवस्थामें जिसने फिर आक्रमण कर दिया वह दूसरा कोई नहीं, वही अलाउद्दीन था। उसीने इस बार पुन: बहुत बड़ी सेना लेकर चढ़ाई की। भट्टकवियोंकी लिखावटसे मालूम होता है कि यह घटना संवत् १३४६ (सन् १२६०) में संघटित हुई; परन्तु "तारीख फरिश्ता" में इसका दूसरा समय बतलाया गया है। जो हो, अलाउद्दीनने चित्तौड़के दक्षिण ओरके पर्वत पर अधिकार करके वहीं अपनी सेना ठहराई और चारों ओर खाई खुदवाकर उस स्थानको बांध लिया। चित्तौड़के लोग आज भी दूरसे वह खाईं देख और पुरानी बातें यादकर लम्बी सांस छोड़ते हैं। परन्तु इसके बादके आक्रमणकारियोंने उसी जगह इतनी खाइयां खोदी हैं कि यह पता लगाना कठिन है कि इनमें अलाउद्दीनकी खुदवाई हुई खाईं कौन है। उसने बड़े सङ्कटके समय सीसोदीय कुलपर आक्रमण किया। परन्तु इसपर भी चित्तौड़पुरी वीरोंसे एकदम खाली नहीं थी। भला यह कब सम्भव था कि सदाकी स्वाधीन चित्तौड़पुरीको अलाउद्दीन सहजमें अपने अधिकारमें कर लेता? वीर राजपूतोंकी नसोंमें जबतक एक बूंद भी खून रहेगा, जबतक उनके तनमें प्राण रहेगा, तबतक वह असम्भव

नहीं कि वे भी चुराकर कोनेमें बैठे रहें। अलाउद्दीनके दूसरी बार आतेही वे जोशमें भर गये और वीरतापूर्वक युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हुए।

"खुमानरासो' के लेखकने इस लड़ाईका हाल कल्पनारूपी अनेक मनोहर रङ्गोंसे रंगकर लिखा है। उनमेंसे एक यहांपर लिखा जाता है। एकदिन दिनभर युद्ध करके राणा रातके समय अपने विश्रामभवनमें बैठे हुए थे। दोपहर रात बीत गई थी और चारों ओर सन्नाटा था; केवल रह रहकर हवाके चलनेसे द्वार के किवाड़ खटखटा उठते थे और दूरसे बीच बीचमें पहरुओंके शब्द सुन पड़ते थे। राणाजी चुपचाप बैठे चिन्ता कर रहे थे कि चित्तौड़के वीर लोग समरभूमिमें लड़ाके लिये सो गये हैं; चारों ओर विपद् सङ्कट उपस्थित है; ऐसे समयमें चित्तौड़ की रक्षा कौन करेगा? इस घोर सङ्कटके समय सीसोदीय कुलके मानकी रक्षा कैसे होगी? इस महा विपत्तिके सर्वसंहारक ग्राससे किसी प्रकार बचकर राणाके १२ पुत्रोंमेंसे कमसे कम एक भी अपने पितरोंको पानी देनेके लिये वर्त्तमान रहेगा या नहीं? वीरवर बप्पाके वंशको नाश होनेसे कौन बचावेगा?—राणाजी बैठे ऐसी बातें सोच रहे थे इतनेमें सहसा उस गम्भीर सन्नाटेको तोड़ते हुए किसीकी आवाज यह कहती हुई सुनाई दी—'मैं भूखी हूं।"—इतना सुनतेही राणाजीकी चिन्ता टूट गई; आश्चर्यके साथ उन्होंने इधर उधर देखा; सामने उनको एक अपूर्व दृश्य दिखाई दिया। चिरागकी धीमी रोशनीमें अपनी कोठरीकी दीवारके बीचोबीच उन्होंने चित्तौड़की अधिष्ठात्री देवीकी भीषण मूर्त्ति देखी! भगवतीको देखतेही राणाका हृदय दुःख और अभिमानसे भर गया। उन्होंने दुःखित स्वरमें जोरसे कहा—"क्या अब भी तुम्हारी भूख नहीं मिटी?—हमारे राजवंशके आठ सहस्र पुरुष समरभूमिमें कटकर तुम्हारा खप्पड़ भर चुके हैं, क्या इतनेसे भी तुम्हारी प्यास नहीं बुझी?"——"मैं राजबलि चाहती हूं; अतएव यदि राजमुकुटधारी १२ राजकुमार चित्तौड़रक्षाके निमित्त रणक्षेत्रमें उतरकर अपने प्राण न देंगे तो मेवाड़राज्य सीसोदीय कुलके हाथसे निकल जायगा।" यह उत्तर देकर देवी तुरन्त अन्तर्धान हो गईं!

राणाजी बड़े सङ्कटमें पड़े। उस रातको उनको तनिक भी नींद नहीं आई। सबेरा होतेही अपने सेनापतियोंको बुलाकर उन्होंने रातकी अद्भुत घटनाका

वृत्तान्त कहा । परन्तु इन बातोंपर किसीको विश्वास नहीं हुआ; सब लोगोंने स-मझा कि अधिक चिन्ताके कारण राणाजीके मस्तिष्कमें फेर पड़ गया है । इसपर राणाजी बोले,—"आप लोगोंको विश्वास नहीं होता, परन्तु आज रातको इस कोठरीमें रहकर आपलोग भी देखें कि देवी पुनः दर्शन देती हैं या नहीं ।" सर-दारोंने यह बात स्वीकार की और ठीक समय पर राणाके विश्रामभवनमें आकर उन्होंने वह दृश्य प्रत्यक्ष देखा । देवी पुनः दिखाई दीं और पहले दिनकी की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार बोलीं,—"प्रतिदिन सहस्र सहस्र म्लेच्छ मरते हैं, पर इससे मुझे क्या ? हर दिन एक एक राजकुमारको राजासनपर बिठाना होगा; किरच छत्र और चमरसे सुसज्जित करके उनको उचित राजसम्मानसे सम्मानित करना होगा; तीन दिनतक उसकी राजाज्ञा मानी जायगी; चौथे दिन रणक्षेत्रमें जाकर वह अपने भाग्यका फल पावेगा । यदि १२ राजकुमार इसी तरह युद्धक्षेत्रमें प्राण त्याग करेंगे तभी मैं चित्तौड़में टिक सकती हूं; नहीं तो नहीं ।" यह कहकर देवी अन्तर्धान हो गईं । चित्तौड़के सरदार आश्चर्यमें डूबे हुए चुपचाप बैठे रहे ।

इस स्थानपर यह कहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं कि यह वृत्तान्त बिलकुल बनावटी है या चित्तौड़रक्षाके लिये सरदारोंको उत्साहित करनेको राणाजीने यह कौशल किया था । हां, यह कहा जा सकता है कि वीरहृदय राजपूतोंको देवता-का दर्शन होना असम्भव नहीं है । वे बड़े विश्वासी और धर्मनिष्ठ होते हैं । उनका विश्वास किसी तरह मिट नहीं सकता । विशेषकर स्वदेशप्रेमी राजपूतोंके मनमें ऐसा विश्वास जमना कि यदि आज्ञाका पालन नहीं किया जायगा तो देवी चित्-तौड़ छोड़कर चली जायंगी और भी सङ्गत है । जो हो, कठोर होनेपर भी देवा-ज्ञानुसार काम करनेको वे तैयार थे । यह कभी नहीं वे देख सकते थे कि उनके जीवित रहते शत्रु चित्तौड़पुरीमें प्रवेश कर लूट और मारकाट मचावें—उनकी सती साध्वी महिलाओंका सतीत्व नाश करें । भगवान् एकलिङ्गके नामकी शपथ खाकर देवीकी आज्ञाका पालन करनेके लिये वे समरक्षेत्रमें उपस्थित हुए । उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जबतक तनमें प्राण रहेंगे तबतक शत्रुओंको नगरके अन्दर नहीं आने देंगे । इसके बाद राणाके बारहों पुत्रोंमें यह चर्चा उठी कि कौन सबसे प-हले देवीकी आज्ञा पूरी करनेके लिये युद्धक्षेत्रमें जायगा । अरिसिंह सबसे बड़े थे,

अतएव अपना बड़प्पन प्रकट करनेके लिये वे अपने और भाइयोंसे पहले समर-भूमिमें गये और तीन दिन विशेष वीरता दिखाकर चौथे दिन वीरगतिको प्राप्त हुए। इसके पश्चात् उनसे छोटे अजयसिंह जानेको तैयार हुए; परन्तु उनपर राणा का सबसे अधिक प्रेम था इस कारण वे नहीं जाने पाये। अजयसिंहने बहुत चाहा बहुत चेष्टा की परन्तु राणाजीने उनको जाने नहीं दिया। लाचार उनसे जो छोटे भाई थे वे लड़ाईके मैदानमें गये। इसी प्रकार क्रम क्रमसे ११ राजकुमार युद्धक्षेत्रमें बारी बारीसे गये और देशरक्षामें उन्होंने अपना जीवन विसर्जन किया। अब राणाजीके केवल एक पुत्र जीवित रहे। उनको राणाजी अपने प्राणोंसे अधिक चाहते थे, उनके बदलेमें अपना जीवन दे सकते थे, परन्तु उनको लड़ाईमें जाकर प्राण देनेकी अनुमति नहीं दे सकते थे। हाय! ऐसा करनेसे तो सीसोदीय कुलके निर्मूल हो जानेका डर था। फिर वीरवर बप्पाके नाम दो बूंद पानी देनेवाला कौन रहता? अन्तमें स्वयं युद्धक्षेत्रमें जाकर प्राण देनेके लिये राणाजी तैयार हुए और अपने सरदारोंको बुलाकर उनसे उन्होंने कहा—"मैं अब युद्धभूमिमें जाता हूं"।

सो चित्तौड़की अधिष्ठात्री देवीके खप्परका बचा हुआ भाग पूर्ण करनेके लिये राणाजी अपने हृदयका रक्त देनेकी तैयारियां करने लगे। लड़ाईके मैदानमें जाने से पहले "जुहार" का हो जाना भी आवश्यक था। राजपूतोंमें कुलकामिनियोंको धधकती हुई आगके कुण्डमें डालकर विजयी शत्रुओंके हाथोंसे उनके धर्मकी रक्षा करनेका नियम था। जिस समय राजपूत वीर स्वदेश और स्वाधीनताकी रक्षाका उपाय नहीं देखते थे, जब उनकी सब आशाएँ मिट जाती थीं, तब वे आपसमें गले मिलकर जुहार करते थे। आज चित्तौड़के लिये वही भीषण समय उपस्थित था; आज चित्तौड़के बचावका कोई उपाय नहीं था; अतएव परस्पर गले मिलकर जुहार कर लेना अत्यन्त आवश्यक था।

राजमहलके अन्दर अन्तःपुरमें जमीनके भीतर एक बहुत बड़ी सुरङ्ग थी। दिनके समय भी उस सुरङ्गमें घोर अन्धकार रहता था। इसी सुरङ्गमें सालूकी लकड़ियोंका ढेर लगाकर चिता तैयार की गई। देखते देखते चिताकी आग धधक उठी—देखते देखते हृदय फाड़नेवाला शोकगीत अलापती हुए चित्तौड़की अग-णित सुन्दरियां उसकी ओर बढ़ने लगीं। जिनके लिये शत्रुओंकी लार टपकती

थी,वे रूपलावण्यमयी ललनाएँ भी उनमें थीं साथ;—साथ सौन्दर्यस्वर्गकी सुकुमारी सरोजनयनी सती साध्वी सुन्दरी पद्मिनी भी थी। चित्तौड़की वीरमण्डली बिना एक शब्द बोले मानों वज्रकी मारी चुपचाप खड़ी यह भीषण तमाशा देख रही थी। स्नेहमयी माता, प्रीति देनेवाली सहधर्म्मिणी और आनन्दमयी कन्याएँ तथा बहिनें सदाके लिये विदा होकर उनके सामने उनके नेत्रोंसे आगे प्राण देनेके लिये जा रही थीं,—तथापि उनकी आंखोंसे एक बूंद आंसू नहीं निकलता था। आज उनके नेत्र एकदम सूखे हुए थे; लाल लाल हो रहे थे; उनमेंसे चिनगारियां निकलती थीं! जो हृदय पहले प्रेमरूपी सुधाके सागरके समान था आज वही रूखा सूखा जलता हुआ श्मशान बन गया था! आज इसी कारण वे यह भयानक लीला कर रहे थे।—देखते देखते वे महिलाएँ सुरङ्गके द्वारके पास पहुँच गईं; धीरे धीरे एक एक करके वे उसके नीचे उतरीं,—त्योंही एक धड़ाकेके साथ उसका विशाल लोहद्वार बाहरसे बन्द कर दिया गया! असंख्य हतभागिनियोंका हृदयको टुकड़े टुकड़े कर डालने और करुणा उत्पन्न करनेवाला शोकराग क्षण भरमें उसी सुरङ्गके अन्दर विलीन हो गया; फिर एक शब्द भी सुनाई नहीं दिया! हाय! सब गया!—रूप, यौवन, लावण्य, गौरव, सब उस सर्वसंहारक आगमें भस्म हो गया!

इतना काम कर चुकनेके पश्चात् राणाजी युद्धक्षेत्रमें उपस्थित होनेको तैयार हुए; परन्तु उनके प्यारे पुत्र अजयसिंहने उनको ऐसा करनेसे रोका। किसी रीति से उन्होंने पिताको युद्धक्षेत्रमें जाने नहीं दिया। इस विषयमें पिता पुत्रमें बहुत तर्क वितर्क हुआ; परन्तु अन्तमें राणाहीकी बात रही। आखिर अजयसिंहको पिताकी आज्ञाके अनुसार कुछ सैनिक लेकर चुपचाप चित्तौड़ छोड़कर एक दूसरी जगह चला जाना पड़ा। वे केलवारा नामक प्रदेशमें पहुँचे। अब राणाको किसी बातकी चिन्ता नहीं थी। पितरोंको पिण्ड देनेवाला, बप्पाके वंशको नाश होनेसे बचानेवाला, एक व्यक्ति जीवित रहेगा,—यह सोचकर राणाजीने निश्चिन्त होकर उत्साहपूर्वक लड़ाईके बाजे बजवाये और सरदारोंको अपने निकट बुलाया। आज उनके सरदार उन्मत्त थे; स्वदेशकी उनको परवाह नहीं थी; अपने जीवनकी उनको ममता नहीं थी! दुर्गका फाटक खोलकर अपने राजाके कहित कहे और

रणमें कूदे हुए वे शत्रुओंकी विशाल सेनाकी ओर चले। पहुँचतेही उन्होंने न जाने कितने शत्रुओंको खण्ड खण्ड करके फेंक दिया। परन्तु सब व्यर्थ हुआ! बड़े भारी समुद्ररूपी शत्रुसैन्यमें थोड़ेसे गिनतीके राजपूत बुलबुलोंकी तरह विलीन हो गये। आज चित्तौड़पुरी जीवशून्यथी; आज वह भयानक श्मशान बनी हुई थी! वहां इधर उधर न मालूम कितनी लाशें पड़ी थीं; भूमि खूनसे रंग गई थी। कोई हथकटा, कोई पैरकटा कोई सिरकटा, कोई शत्रुके शरीरमें तलवार घुसेड़े स्वयं चोट खाकर गिर रहा था। मानों तब भी उसमें जीव था; मानों तब भी वह शत्रुओंसे बदला लेनेको तैयार था!* इस भीषण दृश्यको सौगुना अधिक भीषण करती हुई शत्रुसेना पिशाचोंकी तरह इधर उधर घूमने लगी। अलाउद्दीनने उस जीवशून्य श्मशान जैसे चित्तौड़पर अधिकार किया। अधिकार करतेही पागलोंकी भांति वह पद्मिनीकी खोजमें लगा। पर अब पद्मिनी कहां? पद्मिनी तो आज संसारको रुलाकर चित्तौड़को श्मशान बनाकर इस पापमयी पृथ्वीसे बिदा हो स्वर्गमें जा बसी थी। वह अब कहां?—जिस सुरङ्गके अग्निकुण्डमें अपनी देहको उसने भस्म किया था वह सुरंग तभीसे पवित्र माना जाता है। तबसे किसीने उसमें प्रवेश नहीं किया। सबका विश्वास है कि उसके अन्दर वहांकी रक्षा करनेके लिये एक भयङ्कर सर्प रहता है और जो उसके अन्दर जाता है उसको काट लेता है ⁂।

यह दशा इन्द्रपुरी अमरावती जैसी चित्तौड़ नगरीकी सन् १३०३ई में अलाउद्दीनके आक्रमणके कारण हुई। अधिकार पातेही उसने झालावाड़के अग्निकुलवंशी मालदेव नामक एक सरदारको वहांका शासनकार्य सौंपा। अलाउद्दीन तेजस्वी और पराक्रमी पुरुष था; काम निकालनेके लिये कपटता और धूर्त्तता करना वह खूब जानता था; अतएव प्रायः युद्धोंमें उसकी जीत होती थी। धूर्त्तता, ढंगबाजी, कपटता, निष्ठुरता और हिन्दुओंसे विद्वेष रखनेमें वह औरंगजेबके † समान था। राजसिंहासन पाकर उसने अपना उपनाम "सिकन्दर सानी"(अर्थात्

⁂ टाडसाहबने एकबार इस भयङ्कर सुरंगमें प्रवेश करनेका उद्योग किया था परन्तु विषैले सर्पों तथा गन्दे भापके भयसे वे अपने उद्योगमें सफलता नहीं प्राप्त कर सके थे; लाचार लौट आये थे।

† देखिये हमारी लिखी "बर्नियरकी भारतयात्रा" नामक पुस्तक। उससे औरंगजेबके विषयमें अनेक बातें विदित होंगी। (गं॰प्र॰गुप्त)

द्वितीय सिकन्दर) रक्खा था और इस उपाधिकी उसने मुहर भी प्रचलित की थी।" उसका ऐसा करना कुछ बेमतलब नहीं था; क्योंकि उसने राजस्थानके कितनेही स्थानोंको बहुत बुरी अवस्थामें पहुँचा दिया था । अणहिलवाड़ा, धारा, अवन्ती, मुन्दर और देवगढ़ आदि जिन गौरव भरे नगरोंमें प्रसिद्ध सोलङ्की, प्रमार, परिहार और तक्षकोंके पवित्र सिंहासन स्थापित थे उन सभोंका उसने ध्वंस किया । अग्निकुलके जिन वीर नृपतियोंके केवल एकबार आंख उठाकर देख लेने से समग्र भारतवर्ष कांप उठता था, उनके वंशवृक्षको उसने जड़से उखाड़कर फेंक दिया; उनका सामान्य चिन्ह भी न बचा। गागरोन और बूंदी ये दोनों भट्टीखीची और हारवंशी नृपतियोंके स्थान थे; अलाउद्दीनने इनको भी आक्रमणके द्वारा बुरी अवस्थाको पहुंचाया। परन्तु कालचक्र बराबर पलटे खाया करता है; ये सब राज्य अधःपतित अवस्थासे फिर ऊपर उठे । जिस समय उक्त राज्योंको अलाउद्दीनने विध्वस्त किया था उस समय मारवाड़के राठौर और आमेरके कुशावह (कछवाहे) भारतवर्षके इतिहासमें थोड़ाही नाम पा चुके थे। उस कालमें राठोर राजे सामन्तकी भांति परिहार नृपतियोंके अधीन थे और इसी अधीनता से धीरे धीरे वे अपना मस्तक उठा रहे थे। परन्तु कुशावहोंकी उस समय अच्छी अवस्था नहीं थी; असभ्य मीन बारम्बार आक्रमण करके उनको कष्ट पहुँचाते थे। अस्तु; जीतके बाद कुछ दिनोंतक अलाउद्दीन चित्तौड़में ठहरा। इस बीचमें उसने वहांकी सुन्दर इमारतों, देवमन्दिरों, स्तम्भों तथा भवनोंको तुड़वाकर अपने हिन्दू-विद्वेषका पूरा पूरा परिचय दिया। केवल पद्मिनीका महल उसने छोड़ दिया। कदाचित् उसका स्मारकचिन्ह अक्षय रखनेके लियेही उसने उसे नहीं तुड़वाया।

इस भयानक लड़ाईके बाद सीसोदीय कुलमें केवल अजयसिंह जीवित रहे। हम ऊपर लिख चुके हैं कि अजयसिंह कैलवारा नामक स्थानमें जाकर रहने लगे थे। मेवाड़के पश्चिम ओर अरावली पर्वतमालाके नीचे शेरोनाला नामक एक बड़ा गांव था; उसीके ऊपर कैलवारा था । उस पहाड़ी स्थानमें चुपचाप बैठे मनमें आशा लगाये हुए राणा अजयसिंह किसी प्रकार चित्तौड़पर अधिकार करनेका अवसर ढूंढ़ रहे थे जो चित्तौड़ उनके पूर्वपुरुषोंकी जन्मभूमि था, उसीका अधिकार इस समय एक साधारण सरदारके हाथमें था और वे उसके विषयमें कुछ नहीं

जागते थे,—ऐसीही चिन्ताएँ अजयसिंहको रात दिन लगी रहती थीं, तौभी वे आशा और उत्साहसे बैठे थे कि कभी तो अवसर मिलेगा । उनको कैलवारा भेजते समय युद्धमें जानेसे पहले राणा लक्ष्मणसिंहने कहा था कि तुम्हारे बाद तुम्हारे बड़े भाई अरिसिंहका लड़का चित्तौड़के सिंहासनका अधिकार प्राप्त करेगा । यह बात अजयसिंहको बराबर याद रही । सोते, जागते, खाते, पीते, सब समय वे उस लड़केके विषयमें सोचा करते थे परन्तु कहीं उसका पता न लगता था। उनके निजके पुत्र एकदम बेकाम थे, वे स्वयं वृद्ध हो चले थे, ऐसी अवस्थामें वे खूब समझते थे कि उनके पिता (राणा लक्ष्मणसिंह) का कहना सफल होगा जिसके विषयमें राणा लक्ष्मणसिंहने कहा था उसका नाम हम्मीर था। इसने चित्तौड़की स्वाधीनता और सीसोदीय कुलके खोये हुए गौरवका पुनरुद्धार किया। इसके जन्म और लड़कपनके विषयमें भट्टकवियोंने बहुत कुछ लम्बा चौड़ा हाल लिखा है । हम उसका सारांश नीचे लिखते हैं ।

राणाके प्रथम पुत्र अरिसिंह एकबार अपनी युवावस्थामें कुछ सरदारोंके सहित अन्दवा नामक बनमें शिकार खेलने गये । वहां एक जंगली सूअर पर उन्होंने तीर छोड़ा; परन्तु निशाना चूक जानेके कारण वह सूअर बड़े जोरसे भागा और पासके एक भुट्टेके खेतमें घुस गया । अरिसिंह भी उसका पीछा करते हुए वहां पहुँचे । इतनेमें खेतके बीचोबीच मचानके ऊपर उन्होंने एक स्त्रीको देखा जो इनको देखतेही मचानके * नीचे उतर आई और इनके पास आकर बड़े नम्र शब्दोंमें बोली,—"आप कष्ट न करें; मैं अभी वह शिकार लाये देती हूं ।" यह कहकर उस राजपूत लड़कीने उसी खेतका एक लम्बा पेड़ जो ७—८ हाथ ऊँचा था उखाड़ लिया और उसे छीलछालकर पतला और नुकीला बना लिया । इसके बाद वह फिर उस मचान पर जा चढ़ी और वहांसे उसी पेड़का बनाया हुआ नुकीला तीर कमान पर साधकर इस जोरसे मारा कि वह बनशूकर जो राज

* अनाजके खेतोंके बीचोबीच चार बांस गाड़कर एक मचान बनाया जाता है । उस मचानपर कोई रक्षक हर समय इसलिये कुछ ढेले आदि लेकर बैठा रहता है कि यदि मोर कौव्वे तोते आदि अनाजको नष्ट करनेवाले पक्षी आवें तो वह उनको मार गिरावे या उड़ादे ।

कुमारके तीरसे बचकर भाग गया था तुरन्त गिर पड़ा, गिरतेही उसे वह उठा लाई। यह देखकर राजकुमार अरिसंह तथा उनके साथियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और उस लड़कीकी वीरता तथा साहसके विषयमें बातें करते हुए वे पासकी नदी के किनारे उतरे। वहां जाकर खाने पीनेका प्रबन्ध करने लगे। धीरे धीरे भोजन की चीजें तैयार हुईं; भोजनसे निश्चिन्त होकर वे उस वीर राजपूत-बालाकी प्रशंसा करने लगे। इतनेमें उसी खेतकी ओरसे मट्टीका एक बड़ा गोला आकर राजकुमारके घोड़ेके शरीरमें बड़े जोरसे लगा जिससे भड़ककर वह गिर पड़ा। आश्चर्यसे सब लोग उस खेतकी ओर देखने लगे जिधरसे वह मट्टीका गोला आया था। उन्होंने देखा कि वही खेतकी रखवाली करनेवाली लड़की ढेलवांससे पक्षियोंको उड़ा रही है और उसीका फेंका मट्टीका एक गोला धोखेसे इस ओर आ गया जिसने घोड़ेकी एक टांगही तोड़ दी। इतनेहीमें इधरका वृत्तान्त जानकर वह मचानसे उतर क्षमा मांगनेके लिये राजकुमारके निकट आई। उसका ऐसा साहस, सभ्यता और शीलता देखकर सब लोग बड़े आश्चर्यमें आये। क्या एक मामूली किसानकी लड़कीमें ऐसे गुण हो सकते हैं? क्षमा करना दूर रहे, उन्होंने उस काममें उसका कुछ अपराधही नहीं समझा। अन्तमें राजकुमार उस लड़कीके विषयमें अपने मनमें अनेक बातें सोचने लगे।

शिकार समाप्त करके अरिसिंह अपने साथियोंके सहित घर लौटे। रास्तेमें वह युवती एकबार उनको फिर दिखाई दी। उस समय वह सिरपर दूधका एक बर्तन रखे दोनों हाथोंसे भैंसके दो बच्चोंको पकड़े चली जाती थी। अरिसिंह के साथियोंमेंसे एक दिल्लगीबाजने उसके सिरसे दूधका बर्तन गिरानेके लिये उसकी ओर अपना घोड़ा बढ़ाया। सवारका मतलब समझकर युवतीने कौशल करके अपने एक भैंसके बच्चेको उसके घोड़ेके पैरसे इस ढङ्गसे टकरा दिया कि वह अपने सवारको लिये दिये भूमिपर गिर पड़ा। पता लगानेसे राजकुमारको मालूम हुआ कि चन्दानो * कुलके एक गरीब राजपूतके घरमें यह वीर युवती उत्पन्न हुई है। वह युवती राजपूतकी लड़की थी, अतएव राजकुमारने सोचा कि क्या इसके साथ विवाह नहीं हो सकता? दूसरे दिन बहुत तड़के अपने मित्रोंके सहित

* यह चौहान कुलकी एक शाखा है।

वहां आकर उन्होंने उसके पितासे मिलना चाहा और मिलनेसे पहले अपने एक आदमीको उसके घर भेजा। बुड्ढा राजपूत कुछ खानापीना किये बिना तुरन्त उस आदमीके साथ राजकुमारके पास चला आया। राजकुमारने उसे आदरपूर्वक सामने बैठनेको कहा; परन्तु वहां न बैठकर वह राजकुमारके बहुत पास उन्हींके आसन पर निःसङ्कोच मनसे आ बैठा! उसकी ऐसी ढिठाई देख राजकुमारके साथी हँसने लगे, परन्तु जब उन्होंने देखा कि इस बातसे राजकुमार जरा भी नाराज नहीं हुए बल्कि आदरसे उसे बैठाकर उन्होंने उसकी कन्याके विवाहका प्रस्ताव किया तब उनको विशेष आश्चर्य हुआ। इतनाही नहीं, और भी आश्चर्य उनको उस समय हुआ जब उन्होंने देखा कि बुड्ढेने राजकुमारकी बात स्वीकार नहीं की। अपनी आशा पूरी होते न देख अरिसिंह कुछ दुःखित हुए; परन्तु जो बात होने को होती है वह कब रुक सकती है? कर्मलेख कौन मिटा सकता है? घर आकर उस वृद्ध राजपूतने सब हाल अपनी पत्नीसे कहा। वह विशेष समझदार थी पतिके इस नासमझीके कामपर उसने कुछ बुरा भला कहा और राय दी कि जाकर राजकुमारसे इसके लिये क्षमा मांगो। स्त्रीके समझानेसे बुड्ढेकी समझ आई। उसने राजकुमारके पास जाकर क्षमा मांगी और उन्हें अपनी लड़की सौंपना स्वीकार किया। बहुत शीघ्र उस वीर राजपूत रमणीके साथ राजकुमार अरिसिंहका विवाह हो गया। इसीके गर्भसे कुमार अरिसिंहके एक पुत्र हुआ जिसका नाम हम्मीर रखा गया। जिस समय चित्तौड़में वह भयानक उथलपुथल मच रही थी जिसका हाल ऊपर लिखा गया है उस समय हम्मीरकी उमर बारह वर्षकी थी और उनको कोई जानता नहीं था। उस कालमें वे आनन्दसे खेतीका काम करते और अपने ननिहालमें रहते थे। परन्तु उनका वह आनन्द और सुख बहुत दिनों तक नहीं रहा; उनको बड़ा भारी काम करना था। सो बहुत शीघ्र सीसोदीय कुलके खोये हुए गौरवका उद्धार करनेका उन्होंने दृढ़ निश्चय किया।

देहलीकी मुसलमानी सेनाके पांवोंके बोझसे उस समय भी मेवाड़की भूमि रह रहकर थहरा उठती थी; उस समय भी विजयी तातारी सैनिकोंकी भीषण चिल्लाहट चित्तौड़ दुर्गकी चोटीपर सुनाई देती थी। आज; पवित्र चित्तौड़पुरी विदेशियों और विजातियोंके हाथोंमें थी! कौन उसका उद्धार करता? कौन उसे

उत्तर बनाता ?—एकमात्र अजयसिंह । पर अकेले वे किधर किधर देखते ? सहायक एक भी नहीं, पर विपत्ति चारों ओर थी । एक ओर जब मुसलमानोंसे चित्तौड़का उद्धार करना प्रयोजनीय था तब दूसरी ओर पहाड़ी भीलोंका अत्याचार रोकनेकी भी आवश्यकता थी। वे स्थिर नहीं कर सकते थे कि इन दोनोंमेंसे पहले कौन काम करना चाहिये । भील सरदारोंमें मुञ्जा बलैचा नामक एक बड़ा वीर पुरुष था; वह अजयसिंहसे बहुत शत्रुता रखता था। एक समय उसने उनके निवासस्थान शेरोनल्ल पर आक्रमण किया और अजयसिंह तथा उसमें द्वन्द्वयुद्ध हुआ। उस समय राणाने भाला मारकर उसका मस्तक घायल कर दिया । राणाके दो पुत्र थे;—एकका नाम अजीमसिंह था, दूसरेका सुजनसिंह, और एककी उमर १४ तथा दूसरेकी १५ वर्षकी थी । इतनी छोटी उमरमेंही राजपूतोंकी भविष्य वीरताका उदाहरण मिलने लगता है; परन्तु अजयसिंहके दुर्भाग्यसे उस संकटके समय उनके पुत्र उनको कुछ विशेष सहायता नहीं पहुँचा सके । ऐसी विपत्तिके समय - चित्तौड़की ऐसी शोचनीय अधःपतित अवस्थामें—अजयसिंह बहुत खोज करके हम्मीरको उसके ननिहालसे ले आये । बारह वर्षकी उमरका बालक खेतिहरका शान्तिमय जीवन छोड़कर, स्वदेशका उद्धार करनेके लिये युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हुआ । सबसे पहले अजयसिंहने उसे अपने पुराने शत्रु भील-सरदार मुञ्जा बलैचाके विरुद्ध भेजा । लड़ाईमें जानेसे पहले हम्मीरने चाचाका चरण छूकर कहा—"यदि बलैचाका सिर काट सका तोतो लौटकर देशमें आऊँगा; नहीं तो न आऊँगा ।" इसके बाद बहुतही थोड़े दिनोंमें लोगोंने देखा कि हम्मीर घोड़ेपर चढ़े अपने भालेकी नोक पर बलैचाका कटा सिर लटकाये कैलवाराके पहाड़ी रास्तेसे चले आ रहे हैं । आतेही बड़े धीर और नम्र भावसे वह सिर अजयसिंहके पैरोंके आगे रखकर वे बोले,—"पिता, लीजिये तैयार है; अपने शत्रुका सिर पहचान लीजिये ।" अजयसिंह अत्यन्त आनन्दित हुए । उसी समय राणा लक्ष्मणसिंहकी भविष्यवाणी उनको याद आई। वे समझे कि विधाताने हम्मीरकेही भाग्यमें राज्यकी प्राप्ति लिखी है। बड़े प्रेमसे उन्होंने विजयी भतीजेका मुख चूमा और हत बलैचाके कटे सिरका खून निकालकर उसके ललाट पर राजतिलककी भांति लगा दिया। अजयसिंहके पुत्रोंने उसी समय समझ लिया कि अब उन्हें राज्यकी प्राप्ति नहीं

हो सकती; दूसरेकी (हम्मीरकी) अधीनतामें रहना पड़ेगा । इसी चिन्तामें अ-जीमसिंहका तो वहीं कैलवारामें देहान्त हो गया और सुजनसिंहको इस डरसे कि कहीं पीछे वह कुछ उपद्रव न खड़ा करे देशसे निकाल दिया गया । देश छोड़कर सुजनसिंह दक्षिण देशमें आकर रहने लगा; वहां उसके वंशमें एक महा प्रतापी और तेजस्वी वीर पुरुष जन्मा । उस प्रबल पराक्रमी जगत्प्रसिद्ध वीरका नाम है "शिवाजी" * ।

संवत् १३५७ (सन् १३०१) में वीरवर हम्मीर मेवाड़ राज्यपर अभिषिक्त किये गये; परन्तु उनके अधिकारमें न तो उनका राज्य था, न कोई सहायक, न कुछ आधार । सब कुछ शत्रुओंके हाथमें था । जिस दिन उनके चचा अजयसिंहने उनके ललाटपर राजतिलक लगाया उस दिनसे ६४ वर्ष तक बराबर उद्योग करने के बाद वे मेवाड़के खोये हुए गौरवका उद्धार कर सके । राजस्थानमें "टीकादौड़" नामक एक वीरप्रथा प्रचलित थी । यह प्रथा बहुत प्राचीन कालसे चली आई थी। अर्थात् राजसिंहासन पर अभिषिक्त होतेही नया राजा सेना आदि लेकर किसी निकट अथवा दूरके शत्रुके राज्यपर आक्रमण करता था । परन्तु यदि देशमें सर्वत्र शान्ति रहती, किसीके साथ कुछ झगड़ा न रहता, तो नये राजे किसी नियत स्थानमें नकली चढ़ाई करके ही यह पुरानी वीरप्रथा पूरी कर डालते थे । हम्मीर भी राज्यका भार लेतेही प्राचीन रीतिके अनुसार "टीकादौड़" को चले । उन्होंने अपने चचाके बैरी बलैचा भीलके "पसेलिओ" दुर्ग पर आक्रमण किया और उसे जीता । इस आक्रमणमें उन्होंने बड़ी वीरता प्रकट की ।

भट्टग्रन्थोंमें लिखा है कि, जिस दिन अजमल्ल (अजयसिंह) इस संसारसे बिदा हुए उस दिन जो अरिसिंहके पुत्रने तलवारकी खोल उतारी तो फिर उसे कभी चढ़ानेकी नौबत न आई ।" वास्तवमें हम्मीरको जन्मभर शत्रुओंसे लड़तेही बीता। हम ऊपर लिख चुके हैं कि अलाउद्दीन चित्तौड़का अधिकार मालदेवको सौंप

* मेवाड़के भट्टकवियोंने शिवाजीका वंशविवरण इस प्रकार लिखा है,—अजयसिंह, सुजनसिंह, दिलीपजी, शिवजी, भैरवजी, देवराज, उग्रसेन, माहुलजी, खेलजी, जनकजी, सत्यजी; शाहजी, शिवाजी (महाराष्ट्रकुलका स्थापनकर्त्ता) राम राजा । इसके बाद महाराष्ट्र पर पेशवाओंका अधिकार हुआ ।

गया था। सो मालदेव देहलीकी सेनाके साथ चित्तौड़में रहता था। हम्मीरके पास बहुत थोड़ी सेना थी; ऐसी अवस्थामें वे मालदेवके विरुद्ध कैसे लड़ सकते थे? अन्तमें उन्होंने एक उपाय किया जिसका पीछे उत्तम फल हुआ। केवल खाइयोंसे घिरे हुए नगरोंको शत्रुओंके लिये छोड़कर वे समस्त गांवों और बस्तियोंको उजाड़ने लगे। चारों ओर इस बातकी सूचना भेज दी गई कि "जिन लोगोंको महाराज हम्मीरकी अधीनता स्वीकार हो, वे अपने स्थानोंको छोड़ परिवारके सहित मेवाड़के पूर्व और पश्चिम ओरके पहाड़ोंमें आ बसें; नहीं तो वे शत्रु समझे जायँगे और उनको शीघ्र दुःखित होना पड़ेगा।" यह आज्ञा सुनतेही दलके दल लोग अपने पुराने घरोंको छोड़ निर्जन अरावली पर्वतमालामें जाकर नये नये गृह बनाने लगे। इसके सिवा हम्मीरने मुसलमानोंको कष्ट पहुँचानेके लिये अनेक उपाय किये। प्रजाओंके मेवाड़के गांवोंको छोड़ देनेसे रास्ते अत्यन्त दुर्गम हो गये। हम्मीर उन पहाड़ी रास्तोंमें दल बल-सहित चुपचाप छिपे रहते थे और सहसा शत्रुओंपर आक्रमण कर उनका नाश करते थे। इस नीतिसे असंख्य शत्रु मारे गये। उन सभोंने बड़ी चेष्टा की, पर उस पहाड़ी देशमें वे हम्मीरका पता कहीं न पा सके। क्रमशः उनकी सेनाएँ कट कटकर कम होती गईं। हम्मीरकी चतुराईसे मेवाड़के नीचेकी भूमि शून्य होगई। जिन स्थानोंमें हरेभरे खेत लहराते थे वे झाड़ झंखाड़ और जङ्गली पेड़ोंसे ढँक गये। बस्तियां उजड़ गईं, बाजार बन्द हो गये। ऐसी समयोचित नीतिसे चलकर हम्मीरने बड़ी बुद्धिमानीका काम किया। इस नीतिसे गिह्लोट कुलको लाभ पहुंचा। खृष्टीय दसवीं शताब्दिके मध्यभागसे लेकर, जिस समय महमूद गजनवीके अत्याचारसे समस्त भारतवासी पीड़ित हो रहे थे, अठारहवीं शताब्दि तक समय समय पर राजपूतोंको ऐसीही नीतिका अवलम्बन करना पड़ा था। इसका दृष्टान्त मेवाड़के इतिहासमें बहुत मिलेगा।

हम्मीर कैलवारामें रहने लगे। जो कैलवारा † अबतक निर्जन पहाड़ी स्थान कहा जाता था आज वह हम्मीरके कौशलसे मनुष्योंसे बस गया। उनकी प्रजाएँ

† यहांपर हम्मीरने "हम्मीरतलाव" नामक एक तालाब बनवाया था और उसके तीरपर मेवाड़की अधिष्ठात्री देवीका एक मन्दिर स्थापित किया था। इन दोनों कीर्त्तियोंके देखनेसे उनकी एकान्तप्रियताका स्पष्ट परिचय मिलता है।

मेवाड़की नीची भूमि छोड़कर दुर्गम पहाड़ी स्थानोंमें जा बसीं। उस सङ्कटके समय ऐसे दुर्गम प्रदेशमें बस्ती स्थापित कर हम्मीरने विशेष दक्षताका परिचय दिया था। जिस जगह वे बसे थे वह अनेक पहाड़ोंके बीचमें थी। उन पहाड़ोंमें कई भयानक छिपे हुए रास्ते थे। उनमेंसे होकर अपरिचित विदेशी आदमी कठिनतासे आ सकता था।—कैलवारा एक ऊँचे पहाड़के नीचे अवस्थित है। उसी पहाड़की चोटी पर इस घटनाके बहुत दिन बाद प्रसिद्ध कमलमीर दुर्ग बनाया गया था। यह स्थान (कैलवारा) देखनेमें भी अत्यन्त मनोहर है। इसके चारों ओर दूर दूर तक घना जङ्गल फैला हुआ है; बीच बीचमें असंख्य सोते कलकल शब्दसे बहकर प्रकृतिका गम्भीर भाव प्रकट कर रहे हैं; स्थान स्थानपर लम्बे चौड़े खेत शोभायमान हैं। इस प्रदेशमें तरह तरहके मीठे सुस्वादु कन्द मूल फल अधिकतासे पाये जाते हैं। इसका विस्तार २५ कोससे कुछ अधिक है। धरातलसे यह आठसौ और समुद्रकी समतल भूमिसे दो सहस्र हाथ ऊँचा है। इस ऊँचे पहाड़ी राज्यके चारोंही ओर असंख्य गुप्त और दुर्गम पथ हैं। इन गुप्त मार्गोंसे होकर वहांके निवासी गुजरात मारवाड़ तथा पश्चिम प्रान्तके रहनेवाले सीधेसादे भीलोंके राज्योंमें आ जा सकते हैं और आवश्यकता पड़नेपर उनसे सहायता ले सकते हैं। नहीं कहा जा सकता कि कितनी बार अगुणापानोरके भील वीरोंने गिह्लोट वीरों के साथ उपकार किया था। गिह्लोटोंकी रक्षाके लिये उन्होंने उत्साहसे अपने हृदयका रक्त बहाया था; बिना खाये बिना सोये महा कष्ट उठाकर गिह्लोट कुल वालोंके लिये आवश्यकताके समय भोजन जुटाया था; और हाथोंमें तीर धनुष लेकर वे सच्चे सहायकोंकी तरह इनकी सहायताके अर्थ युद्धक्षेत्रमें खड़े हुए थे। जिस समय शत्रुओंसे गिह्लोट नृपतियोंकी लड़ाई होती उस समय ये भील सब प्रकारसे उनके परिवारके लोगोंकी रक्षा करते। इन उपकारोंके लिये मेवाड़के नृपति उनके बड़े कृतज्ञ हैं; इस कृतज्ञताका बन्धन कभी टूट नहीं सकता; उसका बदला कभी चुकाया नहीं जा सकता; वह पवित्र है—स्वर्गीय है। इसके सिवा मेवाड़के लोग अत्याचारी शत्रुओंसे बचनेके लिये मेवाड़के पूर्व ओरके विशाल पर्वतों और जङ्गलोंमें आ बसे थे; परन्तु निठुर अलाउद्दीनने वहां भी पहुंचकर उन स्थानोंको एकदम विध्वस्त कर डाला।

जिस समय मेवाड़की अवस्था ऐसी शोचनीय थी; जिस समय उसके दुर्ग और हरे पूरे नगर कठोरहृदय शत्रुओंके द्वारा दुर्दशाको पहुंचाये गये थे; उसके हरे भरे खेत और शान्तिमय स्थान हम्मीरकी कठिन आज्ञरचिपी नीतिसे एकदम बिगड़ गये थे; उस समय चित्तौड़रक्षक मालदेवके यहांसे एक विवाह सम्बन्ध आया। ऐसे लड़ाई झगड़े और शत्रुताके समय मालदेवने किस*मतलबसे अपनी प्रबल शत्रु हम्मीरके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेका प्रस्ताव किया, यह बात किसीकी समझमें न आई; इसलिये हम्मीरके मन्त्रियोंके मनमें तरह तरहके सन्देह उठने लगे। परन्तु उनके मना करने पर विचार न कर के हम्मीरने विवाह का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उन्होंने उस समय इस बातकी चिन्ता नहीं की कि ऐसी भीषण गड़बड़के समय मालदेवने किस अभिप्रायसे नारियल ❋ भेजा है। उनके साथी विचारने लगे कि इसमें अवश्य कुछ न कुछ भेद है और भविष्यमें इसका बुरा परिणाम होना सम्भव है। परन्तु हम्मीरका ध्यान इन बातोंकी ओर नहीं था। जब उनके मित्रोंने बहुत दिक करना आरम्भ किया तब वे बोले कि "आपलोग भविष्यके लिये वृथा क्यों चिन्ता करते और घबराते हैं? मालदेवका चाहे कुछ भी उद्देश्य हो नारियल ले लेनेमें क्या हर्ज है? यदि उनके मनमें कोई बुरी बात हो तो होने दीजिये, उससे मैं नहीं डरता। इस विवाहके अवसर पर मैं अपने बड़ बूढ़ोंकी राजधानी देख सकूंगा यही क्या कम बात है? राजपूतोंका कर्त्तव्य है कि चाहे कितनीही और कैसीही आपदा पड़े सबके सहनेके लिये तैयार रहें। यदि मनुष्य सङ्कल्प दृढ़ कर और हृदयमें साहस बांधकर कोई काम करे तो अवश्य सफलता प्राप्त होगी।"—राजकुमारकी ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा देख उनके साथियोंने उनको विशेष नहीं रोका।

बरयात्राकी सब तैयारियां हो गईं। पांचसौ सवार साथ लेकर वीर युवक हम्मीर अपने पूर्वजोंके राज्यकी ओर चले। विवाहका तो उनको केवल बहानाही बहाना था; वास्तवमें मनमें चित्तौड़-उद्धारकी इच्छा थी। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि यातो अपने उद्देश्यमें सफलता लाभ करेंगे, चित्तौड़का उद्धार करेंगे, या वहीं राजमहलके आंगनमें प्राण देकर अपने पूर्वपुरुषोंके चरणोंकी सेवामें पहुंच

❋ नारियल—विवाहसम्बन्धसूचक है।

आयेंगे। धीरे धीरे ये लोग चित्तौड़के बहुत पास पहुंच गये। दूरहीसे चित्तौड़-दुर्ग के ऊँचे ऊँचे कङ्गूरे दिखाई दिये। मालदेवके पांच पुत्रोंने आगे बढ़कर आदरां सहित उनका स्वागत किया। परन्तु नगरके द्वारपर तोरण † वा विवाहसूचक कोई चिन्ह न देखकर हम्मीरके मनमें बहुत सन्देह उत्पन्न हुआ। वे सोचने लगे कि हमारे साथियोंने पहले जो सोचा था वही होता दिखाई देता है। परन्तु इससे वे कुछ निरुत्साह नहीं हुए। उन्होंने मालदेवके पुत्रोंसे इन बातोंका (अर्थात् विवाहके कुछ लक्षणके न दिखाई पड़नेका) कारण पूछा, तो उन सभोंने किसी प्रकार उत्तर देकर उनका सन्तोष कर देना चाहा। उनके उत्तरसे यद्यपि हम्मीरको पूरी तरह सन्तोष नहीं हुआ, परन्तु तौभी सन्देह बहुत कुछ मिट गया। धीरे धीरे ये लोग चित्तौड़दुर्गके बड़े लम्बे चौड़े आंगनमें पहुंचे। अपने बड़े बूढ़ोंकी वीरता और गौरवके स्थलको आज हम्मीरने पहलेपहल देखा। एकबार उन्होंने जी भरके उन स्थानोंको देखा और उनके देखनेसे उनके चित्तमें अनेक प्रकारके भाव उदित हुए। इसी प्रकार इधर उधर देखते हुए वे राजमहलोंमें पहुंचे। वहां पहुंचने पर मालदेव, उसके ज्येष्ठ पुत्र वनवीर ¶ तथा कई सरदारोंने बड़े सम्मानसे उनका स्वागत किया। धीरे धीरे हम्मीरको लोग विवाहस्थानमें ले गये; परन्तु

† तोरण विवाहसूचक होता है। लकड़ीके बराबर बराबर तीन टुकड़ोंको खड़ा करके एक त्रिभुज बनाया जाता है; उसके ऊपर एक नकली मोर बैठाया जाता है। यह त्रिभुज कन्याके मकानके बाहरके द्वारपर स्थापित किया जाता है। कन्याकी सहेलियां मकानकी छतपर उस (तोरण) की रक्षाके लिये खड़ी रहती हैं। जब वर घोड़ेपर चढ़ा हुआ आकर अपने भालेसे उसे तोड़ना चाहता है, तब कन्याकी वे सहेलियां समयोपयोगी गीत गाती हुई उसपर गुलाल छोड़ती हैं। इसके बाद जब तोरण टूट जाता है तब वे वीरनारियां वहांसे भाग जाती हैं।

योरपके उत्तरीय भागमें भी ऐसीही प्रथा प्रचलित है। इससे प्रकट होता है कि प्राचीनकालके लोग वीरतापूर्वक स्त्रियोंको हस्तगत करते थे। भारतवर्षमें यह रीति बहुत पहले भी थी, यह बात सीता और द्रौपदीके स्वयंवरके वृत्तान्तसे अनुमान की जा सकती है।

¶ हमारा लिखा "वनवीर" नाटक देखिये। अभी तैयार हो रहा है। (गं० प्र० गुप्त)

वहां उन्होंने विवाहकी कोई तैयारी वा धूमधाम नहीं देखी। मालदेवने तुरन्तही अपनी कन्याको लाकर उनको सौंप दिया;—परन्तु विवाहकी कुछ विशेष रीति भांति न होकर केवल गँठबन्धन हुआ। कुलपुरोहितने नम्रतापूर्वक कहा—"धैर्य्य धरिये; समय पाकर सब इच्छाएं पूर्ण होंगी।" हमीरने इन बातोंका कुछ भी मतलब नहीं समझा; उनको अनेक प्रकारके संदेह होने लगे। इसके बाद नवोढ़ा दम्पती एकान्त-भवनमें गये; परन्तु वहां हमीर बहुतही चुपचाप और उदास बैठे थे। उनको इस प्रकार उदास देख उनकी नवविवाहिता पत्नीने उनके चरणों पर सिर रखकर बड़े कातर स्वरमें यह कहना आरम्भ किया,—

"स्वामिन्! हृदयनाथ! दासीका अपराध क्षमा कीजियेगा। आप जिस कारण से इतने दुःखित हैं यह मैं जानती हूं। पिताने जिस गूढ़ मतलबसे इस दासीको आपके करोंमें सौंपा है सो भी मैं जानती हूं। यदि अनुमति पाऊँ तो निवेदन करूँ।"—हमीरने एकबार बालिकाकी ओर आंख उठाकर देखा;—देखा कि उसका मुख कोमल, सरल, विमल, तेजपूर्ण और विकार-रहित है। बड़े आदर और स्नेहसे उन्होंने उसे भूमिसे उठाया और कहा कि निडर होकर अपना रहस्य कहो। तब उनकी प्रेममयी पत्नीने पुनः इस प्रकार कहना आरम्भ किया,—"प्राणेश्वर! आश्चर्य न कीजियेगा, मैं विधवा हूं; परन्तु विधवा समझकर इस दासीसे घृणा न कीजियेगा। बहुत छोटी उमरमें भट्टीवंशी किसी राजकुमारके साथ मेरा विवाह हुआ था। उस समय मैं इतनी छोटी थी कि अब मुझे विवाहकी बातोंका कुछ भी स्मरण नहीं है। मेरे पति कैसे थे, यह भी मैं नहीं जानती। मां से जो कुछ सुना है वही आपके आगे निवेदन करूँगी। विवाहके थोड़ेही दिन बाद मेरे पूर्वस्वामी लड़ाईमें मारे गये; तभीसे यह हतभागिनी विधवा और अनाथिनी हुई। आज आपको पाकर मनका सब दुःख दूर हुआ। परन्तु हाय! यह कौन कह सकता है कि मेरे भाग्यमें क्या है।" - इसके बाद वह और कुछ न कह सकी। प्यारे पतिकी छातीपर मस्तक रख वह सरलहृदया बालिका सिसक सिसक कर रोने लगी। उसका सीधापन, सत्यप्रियता और प्रगाढ़ प्रेम देखकर हमीरकी आंखोंसे भी आंसू निकल पड़े और बहुतसी बातें कहकर उन्होंने उसे धैर्य्य धराया; अपने चित्तको भी बहुत समझा बुझाकर शान्त किया। मालदेवने एक विधवाके

साथ धोखेसे विवाह † करके हमीरको अपमानित किया; यह अपमान—यह दुःख—तिजको हमीरने केवल उस प्यारी पत्नीके सरल मुखको देखकर सह लिया। इस राजपूतबालिका अर्थात् मालदेवकी कन्याने स्वयं हमीरको उपाय बतलाये कि किस प्रकार वे इस अपमानका बदला ले सकते हैं, किस रीतिसे चित्तौड़का उद्धार कर सकते हैं; इसके अतिरिक्त उसने इस विषयमें इनको बहुत उत्साहित भी किया। उसीकी सलाहसे हमीरने मालदेवसे अहेजमें जलधर नामक सरदारको मांग लिया। जलधर मेहतावंशी था और चित्तौड़राज्यका वह एक बड़ा समझदार कर्मचारी था। इसके बाद हमीर जलधरको लेकर स्त्रीके सहित १५ दिनमें केलवारा नगरमें आ पहुँचे। यहां आकर वे सुखसे रहने और बड़ी सावधानीसे चित्तौड़का उद्धार करनेके अवसरकी बाट जोहने लगे।

† इस जगह यह लिख देना आवश्यक जान पड़ता है कि हमीरके समयमें राजपूतानेमें विधवाविवाह कैसा समझा जाता था। इसकी मीमांसा निम्नलिखित बातसे हो जायगी। दो वर्ष हुए हमने "हमीर" नामक एक छोटासा उपन्यास लिखा था। वह उपन्यास इन्हीं हमीरके विषयमें है। अनेक समाचारपत्रों और हिन्दीके बड़े बड़े लेखकोंने उसकी समालोचना की। उस समय भी हम "भारतजीवन" पत्रके एडीटर थे, अतएव हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक पण्डित गङ्गाप्रसादजी अग्निहोत्रीने "हमीर" पर जो राय लिखकर हमारे पास भेजी थी उसे हमने १५ अगस्त १९०४ के भारतजीवनमें छापा। अपनी रायमें अग्निहोत्रीजीने एक स्थानपर लिखा था कि—"हमीरके समयमें विधवाविवाह सर्वसाधारणमें किस प्रकार माना जाता था इस बातका सविशेष वर्णन होना चाहिये था।" यह राय पढ़कर जोधपुरके मुंशी देवीप्रसादजी मुन्सिफने हमारे पास एक प्राइवेट चिट्ठी भेजी और भारतजीवनमें सर्वसाधारणके सूचनार्थ प्रकाशित कर देनेके लिये एक नोट भेजा। वह नोट १२ सितम्बर १९०४ के भारतजीवनमें छपा। उसका कुछ अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं जिससे पाठकोंको विदित हो जायगा कि हमीरके समयमें सर्वसाधारणमें विधवा विवाह कैसा माना जाता था। मुंशी देवीप्रसादजीने लिखा था—"*** यों तो विधवाविवाह राजपूतानेकी बहुतसी छोटी जातियोंमें अनादिकालसे होता चला आता है, परन्तु जिन राजपूतोंमें यह प्रथा प्रचलित है

कुछ दिनके बाद मालदेवकी कन्याके गर्भसे हम्मीरके एक पुत्र जन्मा। उसका नाम क्षेत्रसिंह रखा गया। इस आनन्दोत्सव पर मालदेवने हम्मीरको वे सब पहाड़ी प्रदेश दे दिये जो उसके अधीन थे। जब कुमार क्षेत्रसिंह दस महीनेके हुए तब एक ज्योतिषीने कहा कि "चित्तौड़के देवता क्षेत्रपालकी कोपदृष्टि इस बालक पर पड़ी है; यदि शीघ्रही वहां जाकर इस कोपके निवारण करनेका उपाय नहीं किया जायगा तो राजपुत्रका अमङ्गल होना सम्भव है।" यह सुनकर हम्मीरकी पत्नीने सोचा कि यह बहुत अच्छा अवसर है; इस समय दोनों कार्य्य हो सकेंगे; अर्थात् चित्तौड़के क्षेत्रपाल देवका पूजन भी होगा और इसी अवसर पर चित्तौड़में पहुंचकर प्यारे पतिकी सहायता करनेका उपाय भी किया जा सकेगा। तुरन्त-ही क्षेत्रपालदेवके कोपकी सूचना देनेके लिये मालदेवके पास एक पत्र भेजा गया। पत्र पातेही मालदेवने कन्या और नातीको लानेके लिये केलवारामें सैनिक भेजे। उन्हीं सैनिकोंकी रक्षामें हम्मीरकी स्त्री अपने पिताके घर पहुँची। चित्तौड़में पहुँच कर उसने देखा कि मालदेव मादेरियाके मीरोंसे लड़नेके लिये राज्यके प्रधान प्रधान सरदारोंको लेकर चला गया है। सो हम्मीरके चित्तौड़में प्रवेश करनेका यह बड़ा-ही अच्छा अवसर था। जो सरदार चित्तौड़हीमें रह गये थे उनको हम्मीरकी पत्नीने चतुर जलधरकी सलाहसे बहुत थोड़े समयमें अपने वशमें करके अपना पक्षपाती

वे लोग चित्तौड़के राजाओंसे चली हुई बताते हैं। उनके इतिहासोंमें इसका समय हमीर या हमी॰से कुछ पहलेका है। हजारों राजपूत मेवाड़ मारवाड़ आदि देशों में ऐसे हैं जो उस समयसे विधवाविवाह करते आते हैं। वे नातरायत राजपूत कहलाते हैं क्योंकि विधवाविवाहका नाम नाता है। चाहे किसी विधिसे हो, ब्याही और नाते आई हुई स्त्रियों और उनकी सन्तानका दर्जा और हक बराबर समझा जाता है। हां जिन राजपूतोंमें नाता नहीं होता वे नातरायत राजपूतों को कुछ नीचा समझते हैं, पर उनसे बच नहीं सकते; क्योंकि "नातरायतकी तीजी पीढ़ी गढ़ चढ़े" की आम कहावत है। इसका यह तात्पर्य्य है कि तीन पी-ढ़ियोंमें नातरायत राजपूतकी दोहिती या परदोहिती गढ़पतियों अर्थात् राजाओं में जा पहुँचती है।"—अस्तु, जो महाशय "हम्मीर" उपन्यास देखना चाहें वे तीन आनेमें भारतजीवन प्रेस काशीसे मंगवा लें। (सं॰प्र॰गुप्त)

बना लिया । इधर हम्मीर भी दल बलके सहित चित्तौड़के निकट पहुँचे; बागोर नामक स्थानमें उनको सूचना मिली कि सब बन्दोबस्त ठीक है; अतएव विलम्ब न करके वे तुरन्त चित्तौड़में पहुंचे । वहां रुकावट हुई; परन्तु तलवारके ज़ोरसे सब विघ्न विपत्ति टालकर वे वहां पहुंचही गये । उनके हाथमें चित्तौड़का अधिकार आतेही नगरके बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सबने शपथ खाकर उनकी अधीनता स्वीकार की ।

इस ओर शत्रुओंको जीतकर मालदेव भी चित्तौड़को लौटा, परन्तु अबतक उसको जीतकी जो प्रसन्नता थी वह निराशा और दुःखमें बदल गई । जब वह चित्तौड़के मुख्य,द्वार पर पहुँचा तब वहांके सरदारोंने एक पटाखा छोड़कर उसका स्वागत किया! ऐसी दशा देखकर उसे बहुत सन्देह हुआ। नगरमें पहुंचतेही उसने मालूम कर लिया कि ऐसी ऐसी बातें हुई हैं । उसकी सब आशाएँ मट्टीमें मिल गईं । हम्मीरने चित्तौड़के प्रधान प्रधान सामन्तों और सरदारोंको जिस प्रकार अपने हाथमें कर रखा था उससे मालदेवके पुनः प्रतिष्ठा लाभ करने की तनिक भी आशा नहीं थी । तब लाचार होकर अलाउद्दीनके उत्तराधिकारी महमूद खिलजीसे सब हाल कहनेके लिये वह देहली चला गया ।

राणा लक्ष्मणसिंहका भविष्यवाक्य आज पूर्ण हुआ; आज अरिसिंहके पुत्र वीरवर हम्मीरने उस भविष्य गणनाको सार्थक करते हुए चित्तौड़के सिंहासन पर आरोहण किया। चित्तौड़वासियोंके आनन्दकी आज सीमा नहीं थी। शत्रुओंके हाथसे प्यारी मातृभूमिको मुक्त देख आज बालक, युवा, वृद्ध स्त्री पुरुष सभी आनन्दमें मत्त थे। नगरमें घर घर आनन्दलहरी लहरें ले रही थी । सीसोदीय राजाओंके वंशधरने आज सीसोदीय कुलको स्वाधीनता और गौरवका पुनः उद्धार किया— वीरवर बप्पारावलकी सूर्यमुखी विजय वैजयन्ती चित्तौड़-दुर्गकी ऊँची चोटीपर हवामें लहराने लगी;—यह देखकर निकले हुए नागरिक लोग बड़े आह्लादके साथ उस निर्जन पहाड़ी प्रदेशको छोड़ पुनः नगरमें आ आकर बसने लगे। कमलमीरके नीचेकी विशाल भूमि और मेवाड़के पश्चिम प्रान्तका पर्वतनिवास त्यागकर सबके दल लोग अपने पुराने छोड़े हुए स्थानोंमें आने लगे । आज सभीके हृदय आनन्दसे परिपूर्ण थे।

इस प्रकार हम्मीरको उद्धारकर्त्ता मानकर मेवाड़के दलके दल लोग आ आकर उनके झण्डेके नीचे इकट्ठे हुए और उनके लिये मालदेवके विरुद्ध लड़नेको सबके सब बड़े उत्सुक दिखाई दिये। हम्मीरने इस सुयोगको छोड़ना उचित नहीं समझा। प्रजासमूह ही राज्यरक्षाका प्रधान कारण है। वही प्रजासमूह आज वीर हम्मीरके लिये अपने हृदयका रक्त बहानेको तैयार था तो ऐसा सुन्दर सुयोग वे कब छोड़ सकते थे? इतनेमें समाचार मिला कि मालदेवके उभारनेसे महमूद खिलजी पुनः चित्तौड़पर अधिकार करनेके लिये आ रहा है। यह सुनकर हम्मीरने विशेष देरी नहीं की; वे भी सैन्यके साथ मुसलमानोंको रोकनेके लिये आगे बढ़े। वह अशुभ समयमें मालदेव और उसके मुसलमान साथी हम्मीरके विरुद्ध चले थे। लड़ाईमें जीतना तो दूर था, महमूद पकड़ा और हम्मीरके हाथमें कैद हो गया। नासमझीसे वह मेवाड़के पूर्व ओरके दुर्गम पहाड़ी मार्गसे अपनी सेना लाया था; ऐसा करनेसे उसकी बड़ी हानि हुई। वह रास्ता इतना जटिल था कि उसमेंसे निकल न सककर मुसलमानी सेना एकदम बेकाम हो गई; बहुतसे सैनिक मर गये। बहुत कष्ट और हानि उठाकर मुसलमानोंने सिङ्गोली नामक स्थानमें अपने सैनिक इकट्ठे किये। हम्मीरने वहां जाकर उनपर आक्रमण किया। दोनों दलोंमें घोर युद्ध हुआ। हम्मीर अकेले प्रचण्ड बाघकी तरह शत्रुसैन्यका नाश करने लगे। उसी समय मालदेवके एक पुत्र हरिसिंहका उनका सामना हुआ। पहलेही आक्रमणमें हरिसिंह मारा गया।

अन्तमें हम्मीरकी जीत हुई। महमूद खिलजीको बन्दी करके वे चित्तौड़में लाये और वहां लाकर उसे उन्होंने कैदखानेमें बन्द कर दिया। मालदेवके उभारने में आकर उसने बड़े अशुभ मुहूर्त्तमें वीरवर हम्मीरके राज्यपर आक्रमण किया था। कहां तो उसे अपनी जीतकी पूरी पूरी आशा थी, कहां युद्धमें पराजित होकर वह स्वयं बन्दी होगया। तीन मासतक चित्तौड़के कारागारमें कैद रहकर वह कठोर कष्ट उठाता रहा। तीन महीनेके बाद अपने शरीरके बदलेमें अजमेर, रणथम्भोर, नागोर और शिवपुर नामक स्थान तथा पचास लाख रुपये और एकसौ हाथी देकर उसने छुट्टी पाई। उसे छोड़ते समय हम्मीरने उससे कहा—"यह न समझना कि देहलीका बादशाह समझकर और डरकर मैं तुमको छोड़ता हूं। तुम्हारे

ऐसे शत्रुओंके सहजों आक्रमण रोकनेके लिये मेरी तलवार सदा तैयार रहेगी। तुम व्यर्थ चित्तौड़को अपना राज्य समझ और अहङ्कारमें भरकर यहां आये थे, इसीसे तुम्हारी इतनी दुर्दशा हुई और तुमको इतना अपमान सहना पड़ा। अस्तु, क्या हर्ज है,—यदि तुमसे हो सके तो तुम फिर बदला लेनेके लिये मेरे राज्य पर आक्रमण करना। हम्मीर तुम्हारी अभ्यर्थना करनेके लिये चित्तौड़के बाहर ही मिल जायगा।"

जब मालदेवके सब उद्योग नष्ट हो गये तब उसके ज्येष्ठ पुत्र बनवीरने हम्मीर की अधीनता स्वीकार करली। हम्मीरने उसे आदरपूर्वक ग्रहण किया और जिसमें कि ससुरके कुलकी अमर्यादा न हो ऐसी जीविका बनवीरको हो जाय इसलिये उन्होंने नीमच, जिरन, रत्नपुर, केरार आदि कुछ स्थानोंका अधिकारी उसे बना दिया। इन स्थानोंका बनवीरको अधिकारी बनानेके लिये जो दानपत्र लिखा था उसपर हस्ताक्षर करनेसे पहले हम्मीरने उससे कहा कि "मेरे साथ सदा विश्वास का बरताव रखकर मेरी सेवा और अपना पालन करो। देखो, एक समय तुम मुसलमानके दासके समान थे, परन्तु आज एक स्वधर्मी हिन्दूकी सेवामें तुम्हें नियत होना पड़ा। तुम्हारे पिताका अधिकार छिन गया इससे अवश्यही तुमको दुःख हुआ होगा; परन्तु विचारो तो कि यह राज्य किसका है? किसके राज्य पर मैंने अधिकार कर लिया? जब यह मेराही राज्य है तब यही कहा जायगा कि मैंने पुनः इसे प्राप्त किया है। जिस मेवाड़की पहाड़ी भूमिने मेरे पूर्वपुरुषोंका कितनाही रक्त सोखा है उसे भगवान्‌की अनुकम्पासे मैंने पुनः पाया है। तुम यह न समझना कि जीके लिये मैं अपना राज्य धन छोड़ दूंगा जैसा कि मेरे पूर्वपुरुषोंने किया है" बहनोईकी बातें बनवीरको बहुत अच्छी मालूम हुईं। इन बातोंको सार्थक करने के लिये उसने मेवाड़राज्यका विस्तार बढ़ाना निश्चित किया और बहुत थोड़े समयमें भिनसरोर पर पुनः अधिकार करके उसे मेवाड़के अधीन कर दिया। इस प्रकार वीरवर हम्मीरके पराक्रमसे मेवाड़का पूर्व गौरव फिर स्थापित हुआ, जिसे देखकर राजस्थानके सब राजाओंको हार्दिक हर्ष हुआ; उन्होंने अनेक भीड़ें लेकर हमीरका सम्मान किया और आवश्यकता पड़ने पर सेनाओंसे उनकी सहायता की।

उस समय सम्पूर्ण भारतवर्षमें हमीरही सबसे अधिक पराक्रमशाली राजा थे। भारतके अन्यान्य प्राचीन हिन्दूराजवंश मुसलमानोंके कारण गिर गये थे। मारवाड़ और मेवाड़के वर्त्तमान नृपतियोंके पूर्वपुरुष और बूंदी, ग्वालियर, चन्देरी, रैसीन, सीकरी, कालपी आदि राज्योंके अधिपति बड़े विनीतभावसे हमीरकी पूजा करते उनकी आज्ञाएँ मानते और लड़ाईके समय अपनी सेनाओंसे उनकी सहायता करते थे।

जिस बुरे दिन भारतकी स्वाधीनताका हार तातारियोंके गलेमें चला गया था उस दिनसे मेवाड़राज्यका प्राचीन प्रताप बहुत घटने लगा था; परन्तु फिर भी इससे मेवाड़की कुछ विशेष हानि नहीं हुई। उस समयसे लेकर बाबरके समय-तक बहुतसे वीर नृपति मेवाड़के सिंहासनके अधिकारी हुए। यद्यपि वे निष्कण्टक होकर राज्यका सुख नहीं भोग सके, यद्यपि मालव गुजरात और देहलीके मुसल-मान नृपति बार बार उनके साथ शत्रुताका व्यवहार करते थे, तथापि चित्तौड़का राज्य उनसे नहीं छूटा। विशेषकर जिस समय देहलीके सिंहासनके कारण खिलजी, लोदी और सूरवंशी नृपतियोंमें परस्पर झगड़ा हो रहा था उस समय इन्होंने अ-पना प्रभुत्व और भी दृढ़ कर लिया था। उस कालमें केवल स्वदेशके ही शत्रुओंको इन्होंने नहीं दबाया था, वरन् दिग्विजयके लिये बाहर निकलकर एकओर तो वे नगरकोटकी पहाड़तली तक आ पहुंचे थे और दूसरी ओर देहली नगरके द्वारतक। इस समय शान्ति रहनेके साथ साथ मेवाड़की विशेष उन्नति भी हुई थी। इसका इतनेहीसे अनुमान हो सकता है कि उस समय मेवाड़में जो कई विजय-स्तम्भ बनवाये गये थे वे बहुत मूल्यवान् थे; क्योंकि ऐसे एक एक स्तम्भके बनवानेमें एक एक राज्यकी एक एक पीढ़ीकी आमदनी खर्च हो जाती थी। पहले लिखा जा चुका है कि केवल पद्मिनीके भवनको छोड़ अलाउद्दीनने मेवाड़की सभी सुन्दर अट्टालिकाओंको गिरवा दिया था; परन्तु हम देखते हैं कि पद्मिनीके भवनके अति-रिक्त एक और भी अट्टालिका बच गई थी। वह अट्टालिका जैनियोंका एक धर्म-भवन थी। यह नहीं कहा जा सकता कि उस भयानक संहारके समयमें जब कि सभी पवित्र स्थानोंको मुसलमानोंने तोड़फोड़ डाला तथा गिरवा दिया था वह भवन कैसे बच गया। कदाचित् जैनियोंके एकेश्वरवादी होनेके कारणही अलाउ-

होमने उनके पवित्र धर्ममन्दिरको नहीं तुड़वाया । इन महाशिलाओंके देखनेसे स्पष्ट विदित होता है कि सीसोदीय नृपति शिल्पविद्याके बड़े अनुरागी थे; विशेषकर इमारतोंमें की हुई कारीगरी वे बहुत पसन्द करते थे । जिस समयकी बात हम कहते हैं उस समय कर (खिराज) के सिवाय हिन्दू राजाओंकी आयका कोई दूसरा उपाय नहीं था; परन्तु इतनेपर भी किस प्रकार वे इन स्तम्भोंको बनवाते और बड़ी बड़ी सेनाएँ रखते थे, यह सोचकर आश्चर्य होता है । अवश्यही वे बड़ी धीरता समझदारी और उत्तम रीतिसे राज्यकार्य चलाते थे, अन्यथा ये बातें जो ऊपर लिखी गईं दूसरे किसी प्रकार नहीं हो सकती थीं । अपने राजाओंकी तरह मेवाड़की प्रजाओंने भी उस उन्नत और समृद्ध अवस्थामें अपनी कीर्त्तिके स्तम्भ स्थापित किये थे; परन्तु कालके कठोर हाथोंने उन कीर्त्तिस्तम्भोंको एकदम तोड़फोड़ डाला; इस समय उनका बचा खुचा टूटा फूटा चिह्न मात्र देख पड़ता है । अस्तु ।

बहुत दिनोंतक सुख, गौरव और उन्नतिके साथ राज्य करके वृद्धावस्थामें महाराज हम्मीर स्वर्गवासी हुए । वे बड़े धीर, तेजस्वी, साहसी और सुदक्ष नृपति थे । उनके इन सुन्दर गुणोंकी बातें मेवाड़के लोग प्रायः कहा करते हैं । इस समय भी गिह्लोट कुलके दूसरे प्रातःस्मरणीय राजाओंके पवित्र नामोंके साथ वीर हम्मीरका नाम भी लिया जाता है ।

हम्मीरकी मृत्युके बाद संवत् १४२१ (सन् १३६५) में उनके ज्येष्ठ पुत्र खेतसिंह ने चित्तौड़के सिंहासनका अधिकार प्राप्त किया । खेतसिंह योग्य पिताके योग्य पुत्र थे । छोटी उमरसे ही वे अपने माननीय पिताके ढङ्ग पर चलते थे । थोड़ेही दिनोंमें पिताकी वीरता, धीरता और तेजस्विताका अनुकरण करते हुए उन्होंने अजमेर और जिहाजपुर जीता और मण्डलगढ़, दसूरी तथा सम्पूर्ण छप्पनको अपने विशाल राज्यमें मिला लिया । एकबार बकरोल नामक स्थानमें देहलीके बादशाह हुमायूंके * साथ उनका युद्ध हुआ । उस युद्धमें इन्हींकी जीत हुई; हुमायूं द्वारा

* यह हुमायूं कौन था ? भारतके इतिहासमें सन् १३६५ और १३८२ के बीचमें किसी हुमायूंका नाम नहीं मिलता । तो फिर टाड साहबने यहां किस हुमायूंके विषयमें लिखा है ? सुप्रसिद्ध मुगल बादशाह हुमायूंका नाम तो इतिहास पढ़नेवाले सभी लोग जानते हैं और यह भी जानते हैं कि वह १६ वीं शताब्दिमें

परन्तु दुर्भाग्यवश बेचारे खेतसिंहकी अकालमृत्यु हो गई। मेवाड़के बुन्दी नामक ग्रामके हाड़ावंशी एक सरदारकी कन्यासे खेतसिंहका विवाह नियत हुआ था; परन्तु उस दुष्ट हाड़ा सरदारने विवाह होनेसे पहलेही गुप्तरूपसे खेतसिंहको मार डाला। यह नहीं मालूम कि किस कारण उसने इनकी हत्या की।

दुष्ट हाड़ा सरदारके द्वारा जब खेतसिंह मारे गये तब संवत् १४३९ वि० (सन् १३८२ ई०) में राणा लाखने चित्तौड़के सिंहासन पर आरोहण किया। राज्यका अधिकार पातेही उन्होंने मेरवाड़ा नामक पहाड़ी देश जीता और वहांके प्रधान दुर्ग विराट्गढ़को तोड़कर उसकी जगह प्रसिद्ध बेदनोड़ दुर्ग बनवाया। परन्तु इस-को अपेक्षा एक और बड़े तथा आवश्यकीय काममें हाथ डालकर उन्होंने विशेष नाम पाया और साथही उसके द्वारा वे अपने राज्यको भी उन्नत कर सके। राणा खेतसिंहने भीलोंसे जो अप्पन प्रदेश लिया था उसके अन्तर्गत जावरा नामक ग्राम में चांदी और टिनकी एक खानिका पता लगा। कहा जाता है कि इन खानियों में सप्तधातु † अधिकतासे पाये जाते थे; परन्तु अब यह बात अत्युक्ति समझी जाती है। सोनेका तो कोई चिह्न भी नहीं पाया जाता। चांदी, टिन, तांबा, सीसा

हुआ था। अतएव यह स्पष्ट है कि उस हुमायूंका का कोई सम्बन्ध यहां नहीं है। एलफिन्ष्टन साहबने अपने प्रसिद्ध इतिहासमें लिखा है कि देहलीके नसीरुद्दीन तुगलकका हुमायूं नामक एक पुत्र था, पिताकी मृत्युके बाद १३९४ ई० में वह देहलीके सिंहासन पर बैठा। केवल समयके थोड़ेसे अन्तरको छोड़ टाड साहबके लिखे हुमायूं और इस हुमायूंकी सब बातें मिलती हैं। यह हुमायूं बूढ़ी अवस्थामें देहलीका बादशाह हुआ था और डेढ़ महीने बादशाहत करके मर गया था। जान पड़ता है कि यहांपर इसी हुमायूंके विषयमें लिखा गया है। यद्यपि १३९४ से पहले इसने राजसिंहासन प्राप्त नहीं किया था, तौभी इसमें कुछ सन्देह नहीं कि १३६५ ई० में वह वर्त्तमान था।

Elphinstone's History of India P. P. 413, 441.

† स्वर्णं रौप्यञ्च ताम्रञ्च रङ्गं यशदमेव च।
सीसं लौहञ्च सप्तैते धातवो गिरिसम्भवाः॥ भावप्रकाश।

कहा जाता है कि इन सातों धातुओंका सम्बन्ध खान वहींसे है।

और सुर्मा अधिकतासे निकलता है; परन्तु जो चांदी और टिन एकही खानिसे निकलते थे और उनको अलग अलग कर लिया जाता था अब अधिक टिन अलग करने पर भी बहुत थोड़ी चांदी निकलती है ❀ ।

लाख राणाके समयमें जिस प्रकार मेवाड़राज्यके धन आदिकी वृद्धि हुई थी उसी प्रकार स्वयं उन्होंने गौरव भी बहुत प्राप्त किया था । उनकी वीरता, महत्ता और तेजस्विताका बहुत परिचय मिलता है। आमेरके अन्तर्गत नगराचल ¶ नामक स्थानमें शङ्खलावंशके कुछ वीर राजपूत रहते थे; राणाने उनसे लड़कर उनको परास्त किया । केवल ये राजपूतही नहीं, वरन् देहलीके मुहम्मदशाह लोदीकी सेना भी बेदनोर नामक स्थानमें इनके द्वारा खूबही पराजित हुई थी । लाख राणा जैसे वीर थे वैसेही वीरोचित कार्मोंमें उन्होंने अपना जीवन दिया । अर्थात् इन घटनाओंके कुछही दिन बाद मुसलमानोंने गयातीर्थ पर आक्रमण किया । म्लेच्छों को अपने एक पवित्र तीर्थस्थान और सनातन धर्म पर आक्रमण करनेका उद्योग करते देख भला आर्यवीर कब चुप रह सकते थे ? तुरन्तही सारे भारतवर्षमें हलचल मच गई; क्षत्रिय वीर अपनी सेनाएँ लेकर पुण्यभूमि गयाका उद्धारके लिये दौड़े; सीसोदीय वीर लाख भी उन्हीं वीरोंमें था । इस धर्म्मयुद्धमें अतुल वीरता दिखाकर अन्तमें वह स्वर्गको सिधारा । उसके स्वधर्म्मानुराग और स्वदेशप्रेमके कारण दूसरे प्रसिद्ध प्रातःस्मरणीय राजाओंके नामोंके साथ उसका नाम भी मेवाड़में घर घर लिया जाने लगा । राणा लाख जैसा स्वदेशहितैषी था वैसाही वह शिल्पका प्रेमी भी था । स्वदेशकी शोभा बढ़ानेके लिये उसने शिल्पके जो काम बनवाये थे वे अब

❀ ये धनसे पूर्ण खानियां बहुत दिनोंसे बेकाम पड़ी हैं । जिस भूमिके अन्दर ये हैं वह इस समय घने जङ्गलसे ढंकी हुई है । कोई साहस करके उनमें प्रवेश नहीं कर सकता । वहांके निवासियोंने इन खानियोंकी अधिष्ठात्री देवीकी जो मूर्त्तियां और मन्दिर बनवाये थे वे इस समय टूटफूट गये हैं । जङ्गलसे एक फूल तोड़कर भी कोई अब देवीका पूजन नहीं करता । वहांके भील इन प्राचीन देव देवियोंको छोड़कर नवीन देवताओंकी पूजा करते हैं । वे भगवती लक्ष्मीका पूजन त्यागकर इस समय शीतला माताको पूजते हैं ।

¶ झुंझनू, सिंघाना और नर्बानासे प्राचीन नगराचल राज्य बना था ।

भी वर्त्तमान हैं और उसकी गहरी शिल्पप्रियताका परिचय देते हैं। उसने राज्यके अनेक स्थानोंमें बड़े बड़े तालाब और बनावटी सरोवर खुदवाये थे। इनके सिवा शत्रुओंके आक्रमणसे रक्षा पानेके लिये अपने राज्यमें स्थान स्थानमें उसने बड़े बड़े दुर्ग प्रतिष्ठित किये थे। लक्ष्मीदेवीकी आवासभूमि उन खानियोंमेंसे जो विपुल धन निकलता था उसको वह स्वदेशकी उन्नति और अच्छे कामोंमें खर्च करता था। विशेषकर अलाउद्दीनने जिन शोभामय स्थानों और देवमन्दिरोंको तुड़वा डाला था उनको राणा लाखने बहुत रुपये लगाकर फिरसे बनवाया। सुन्दरी पद्मिनीके सुन्दर राजमहलके ढङ्ग पर उसने जो एक दूसरा देखने योग्य महल बनवाया था उसका कुछ अंश अबतक वर्त्तमान है। इन स्थानोंके अतिरिक्त बहुत धन व्यय करके राणा लाखने एक बहुत बड़ा ब्रह्ममन्दिर स्थापित किया था। यह मन्दिर एकेश्वर भगवान् ब्रह्माके नाम पर बना था; इसीलिये उसमें किसी देवी देवताकी मूर्त्ति नहीं थी। कदाचित् इसीसे वह (मन्दिर) हिन्दूविद्वेषी शत्रुओंके आक्रमणसे नष्ट नहीं हुआ, नहीं तो अबतक ज्योंका त्यों बचा न रहने पाता।

राणा लाखके बहुतसे बालबच्चे हुए। उन्होंने राजस्थानके भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें अपने अपने नामपर एक एक स्वतन्त्र स्वतन्त्र गोत्र स्थापित किये। उनमें लूणावत और दूलावत विशेष प्रसिद्ध हैं। इस समय अगुणा पानोरके आसपासके तथा अरावलीके दूसरे प्रदेशोंमें रहनेवाले स्वाधीन पहाड़ी जमींदार अपनेको लूणावत और दूलावत बतलाते हैं *। लाखके सबसे ज्येष्ठ पुत्रका नाम चण्ड था। चण्ड सबसे बड़ा होनेपर भी पिताके राज्यासनका अधिकारी नहीं हो सका। किस घटनासे प्राचीन समयसे चली आई हुई उत्तराधिकारकी रीतिमें ऐसा हेरफेर हुआ और ऐसा होनेसे मेवाड़राज्यमें कैसे कैसे अनर्थ उपस्थित हुए, यह सब वृत्तान्त आगेके अध्यायमें देखिये।

---

* चप्पनके निकटके कार्योड़के सायङ्गदेवत सरदार तथा सिन्ध नदके किनारेके सोडवार राजे भी राणा लाखके वंशमें उत्पन्न हुए हैं।

छठा अध्याय।

स्त्रियोंके साथ राजपूतोंका शिष्टाचार;—मेवाड़में ज्येष्ठ पुत्रके उत्तराधिकारी होनेके नियममें हेरफेर;—सच्चे अधिकारी चण्डके स्थानमें छोटे मकुलजीका राज्याधिकारी होना;—राठौड़ोंके अनुचित अधिकारसे अनेक गड़बड़ोंकी उत्पत्ति;—उनको चित्तौड़से हटाकर चण्डका मन्दोर नगर प्राप्त करना;—मेवाड़ और मारवाड़का सम्बन्ध;—मकुलजीका राज्यशासन;—उसके मारे जानेका वृत्तान्त।

लोग कहते हैं कि जो लोग स्त्रियोंसे अधिक अनुराग रखते हैं, उनका अधिक मान करते हैं, वे अधिक सभ्य होते हैं। यदि यह सिद्धान्त माननेके योग्य हो यदि स्त्रियोंके प्रति अनुराग और शिष्ट व्यवहारकी अधिकता वा कमीके अनुसार जातीय सभ्यताकी तुलना की जाय, तो राजपूतोंको सभ्यतामें सबसे आगे बढ़ा हुआ मानना पड़ेगा। स्त्रियां राजपूतोंकी अत्यन्त पूजनीया और माननीया होती हैं; उनका थोड़ासा अपमान होनेसे भी—या उनके सम्मानके योग्य शिष्टाचारमें जरा भी कमी होनेसे—तेजस्वी राजपूतोंके क्रोधकी आग एकदम भड़क उठती है, और जबतक अपमानकर्त्ताके हृदयका रक्त बहाकर वे उस आगको बुझा नहीं लेते तबतक उनको किसी तरह शान्ति नहीं मिलती। आगापीछा न सोचकर इस शिष्टाचारमे थोड़ासा अन्तर लानेके कारण एक प्यारा सम्बन्धी शत्रु समझा जाने लगा था। जो राठौड़ और कुशावह (कछवाहे) बहुत दिनोंतक अभिन्न मित्र थे, इसी शिष्टाचारमें गड़बड़ डालनेके कारण एक दूसरेके बड़े शत्रु हो गये। इससे दोनोंका अधःपतन हुआ। जब उनमें परस्पर मित्रता थी तब उनकी एकता और संयुक्त बलके आगे महाराष्ट्रीय वीर तिनकोंकी तरह उड़ जाते थे; परन्तु इस झगड़ेमें पड़कर जब वे एक दूसरेसे अलग हो गये तब मरहठोंने उन दोनोंकोही परास्त कर उनको हानि पहुँचाई। अतएव समझना चाहिये कि तेजस्वी राजपूतोंके लिये स्त्रीविषयक शिष्टाचार सामान्य नहीं है। स्त्रीके विषयमें मेवाड़ेश्वर राणा लाखने जरासी हँसी की थी, परन्तु इसीसे उनके ज्येष्ठ पुत्र चण्डके हृदयमें जो आग बल

उठी वह शीघ्र नहीं बुझी। उस आगके बुझानेमें राज्यकी एक प्राचीन विधि बद-लनी पड़ी और उससे मेवाड़को जो हानि हुई वह मुगलों या मरहठों किसीके आक्रमणसे होनी सम्भव नहीं थी।

सुख दुःखसे जीवन व्यतीत करते हुए राणा लाख वृद्धावस्थाको पहुँचे। बुढ़ापा आने पर राज्यकार्य्यकी चिन्ता छोड़कर शान्तिके साथ ईश्वरके ध्यानमें समय बि-तानेका उद्योग वे करने लगे। उनके पुत्र और पौत्र यथायोग्य वृत्ति और भूमि पाकर आनन्दसे रहते थे, फिर अब उन्हें किस बातकी चिन्ता होती? इस समय केवल ज्येष्ठ पुत्र चण्डको राज्यका भार सौंपकर निश्चिन्तताके साथ वे ईश्वरकी उपासनामें लग सकते थे। परन्तु विधाताको ऐसा स्वीकार नहीं था; उनको फिर संसारस्रोतमें पड़ना पड़ा। इससे उनकी परमार्थचिन्तामें रुकावट हुई, उनकी शान्तिके मार्गमें कांटे पड़े!—सांसारिक झंझटोंसे छुटकारा पाकर भी वे न पा सके।

एकदिन राणा लाख अपने मन्त्रियों सामन्तों और सरदारोंके साथ राजसभा में बैठे थे, इतनेमें मारवाड़के राणा रणमल्लके यहांसे "नारियल" लिये हुए एक दूत आया। राणाजीने उचित सम्मान और आदरके साथ उस दूतकी अभ्यर्थना करने तथा मारवाड़नरेशका कुशलवृत्तान्त इत्यादि पूछनेके बाद उसके आनेका वास्तविक कारण पूछा। दूत बोला—"महाराणाके ज्येष्ठ पुत्र युवराज चण्डके साथ अपनी कन्याका विवाह करना स्थिर करके महाराज रणमल्लने यह नारियल भेजा है।" चण्ड उस समय राजसभामें नहीं थे; अतएव थोड़ी देर ठहरनेके लिये कह-कर राणाने नम्र शब्दोंमें दूतसे कहा कि "चण्ड अभी आकर इस विषयमें अपनी सम्मति प्रकट करेगा।" इसके बाद अपनी दाढ़ीके घने बाल उमेठते हुए हँसीमें उन्होंने कहा—"मैं नहीं समझता कि यह खिलवाड़की चीज आपलोगोंने हमारे जैसे वृद्ध पुरुषके लिये भेजी है जिसके बाल पक गये हैं।" राणाकी इस मीठी दिल्लगीको सुनकर सभामें जितने लोग उपस्थित थे बड़े आनन्दित हुए और उनकी रसीली बातकी बारम्बार प्रशंसा करने लगे। इधर इसी विषयमें बातें हो रही थीं कि इतनेमें चण्डने आकर सब हाल सुना। पिताने हँसीमें भी जिस सम्बन्धको क्षण भरके लिये अपना कहा वह सम्बन्ध पुत्र कैसे स्वीकार कर सकता था? चण्ड के मनमें यही चिन्ता उत्पन्न हुई। बहुत सोच विचारकर उन्होंने स्थिर किया कि

इस विवाह पर राजी होना किसी प्रकार उचित नहीं है। राणाके कानोंतक भी यह बात पहुँची। पुत्रकी इस बातको ढिठाई समझकर राणाजीने बारबार चण्ड को समझाया; परन्तु उनकी शिक्षाका कुछ भी फल नहीं हुआ; चण्डने किसी तरह अपना इरादा नहीं तोड़ा। राणा बड़े सोचमें पड़े! एक ओर तो चण्डकी कठिन प्रतिज्ञा और दूसरी ओर राणा रणमल्लका अपमान! उपदेश, मीठी मीठी बातें, अनुरोध, आज्ञा—और अन्तमें डराना धमकाना सब व्यर्थ हुआ; दृढ़प्रतिज्ञ चण्डने किसी प्रकार यह विवाह करना स्वीकार नहीं किया। आखिर राणाजी उनसे बड़े अप्रसन्न हुए और इसलिये कि रणमल्लका अपमान न हो लाचार होकर उन्होंने स्वयं यह विवाह करना स्वीकार किया। कहां तो वे सांसारिक कामोंसे अलग होकर जीवनके अन्तिम दिन शान्तिसे बिताना चाहते थे, कहां उनको और भी अधिक संसारसागरमें डूबना पड़ा! राणा यह सोचकर बहुत रुष्ट हुए कि जिस पुत्रको वे इतना प्यार करते थे, जिसको राजगद्दीका अधिकारी बनाकर सांसारिक झंझटोंसे छूटना चाहते थे, उसीने जब उनके सुख दु:खकी चिन्ता न की उनका कहना नहीं माना तब वह किस कामका? क्रोधमें उन्होंने चण्डको कुछ बुरी भली बातें भी कहीं। तेजस्वी चण्डने चुपचाप वे सब बातें सुन लीं। यद्यपि उसका हृदय अभिमानसे भरा हुआ था परन्तु पिताकी बातोंका उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। अन्तमें राणाजी बोले,—"अच्छी बात है, मैंही विवाह करता हूं; परन्तु याद रखो कि यदि इस स्त्रीके गर्भसे कोई पुत्र हुआ तो तुम उत्तराधिकारी नहीं होने पाओगे; वही राज्यका अधिकारी होगा।—कसम खाओ।" राणाजीके इस कठोर वाक्यसे तेजस्वी चण्डके सिरका एक बाल भी नहीं हिला। अचल, अटल, स्थिर और गम्भीर भावसे खड़े होकर उसने कहा—"हां पिताजी, मैं भगवान् एकलिङ्गके नामपर शपथ खाकर कहता हूं कि यदि ऐसा होगा तो मैं स्वयं उत्तराधिकारका स्वत्व त्याग दूंगा।"

कर्मलेख कौन मिटा सकता है? बारह वर्षकी बालिका ५० वर्षके हृद्धको समर्पित हुई। इस विचित्र जोड़ेसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ – उसका नाम मकुलजी रखा गया। जब मकुलजी ५ वर्षका हुआ तब राणाजीने सुना कि मुसलमानोंने पवित्र गयातीर्थ पर आक्रमण किया है और उनके आक्रमणसे उस तीर्थस्थानकी

रक्षाके लिये भारतवर्षके दूसरे राजे महाराजे वहां आ रहे हैं। अतएव उन्होंने भी जाना निश्चित किया। भारतवर्षीय राजाओंको इस बातका विश्वास था कि— "राज्यशासन करनेमें राजाओंको अनेक पापके कार्य्य करने पड़ते हैं। अन्तिम अवस्थामें राज्य, धन और विषयवासना त्यागकर दान, पुण्य, परोपकार, तीर्थदर्शन परमार्थचिन्ता आदि किये बिना वह पाप नहीं छूटता।" इसी विश्वास पर राजपूत नृपति बड़ी उमरमें ऊपर लिखे अनुसार चलते थे। परन्तु इस्लामधर्मके मानने-वाले तातारियोंने जिस दिन हिन्दुओंके सनातन धर्मके बिगाड़नेके लक्षण दिखाये, जिस दिन अपनी इस इच्छाके पूर्ण करनेके लिये वे अपनी तलवारोंसे काम लेनेको तैयार हुए, उस दिनसे यहांके राजाओंने अन्तिम समय शान्तिमय जीवन त्यागकर कठोर वीरधर्म्म अवलम्बन किया; उसी दिन उन्होंने शतद्रु और कावेरीके किनारों की भूमि रक्तसे रंग दी और गयाधामके उद्धारको अपना साधन बनाया। उनको विश्वास था कि यदि मुसलमानोंके हाथोंसे इस पवित्र गयातीर्थको बचा सके तो पुन: हमलोगोंका जन्म नहीं होगा; अप्सराएँ दिव्य विमानोंमें बिठाकर हमको तुरन्त स्वर्गको ओर ले जायँगी। इसी विश्वाससे उत्साहित होकर भारतवर्षीय राजे महा राजे बड़ी अवस्थामें मुसलमानोंसे धर्मयुद्ध करते थे,—यही उनकी तपस्या थी, यही उनका व्रत था। आज महाराणा लाख भी इस कठोर व्रत इस कठिन तपस्याके लिये तैयार हुए। लड़ाईमें जानेसे पहले उन्होंने अपने राज्यका उचित प्रबन्ध कर देने का विचार किया। उनकी यही इच्छा थी कि उनके चले जानेके बाद यहां राज्य में कुछ गड़बड़ न हो। अतएव कौन उत्तराधिकारी होगा, कौन मेवाड़राज्य प्राप्त करेगा, यह कुछ न कहकर महाराणाने चण्डसे केवल यह पूछा कि "मैं तो जाता हूं और आशा नहीं कि इस जीवनमें कभी लौटूं; अब प्रश्न यह है कि मकुलजीकी जीविकाका क्या प्रबन्ध होगा? उसके निर्वाहके लिये क्या उसे कुछ सम्पत्ति देदेनी चाहिए?" तेजस्वी चण्डने स्थिर धीर, और गम्भीर स्वरमें उत्तर दिया, "चित्तौड़ का राज्यशासन।" चण्डके इस सरल और उदार उत्तरको सुनकर भी राणाजीके मनमें कुछ सन्देह हुआ, अतएव लड़ाईमें जानेसे पहले उन्होंने मकुलजीको राज्य पद पर अभिषिक्त कर देना चाहा। बहुत शीघ्र अभिषेक कार्य्य हो गया। जब पांच वर्षका बालक मकुलजी राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हो चुका तब वीरवर चण्डने

उसने एक विश्वासी सरदारकी तरह रहना स्वीकार किया। अतएव उसी समय उनको प्रधान राजमन्त्रीका पद दिया गया और उनके लिये यह नियम भी कर दिया गया कि अबसे जिन जिन सामन्तोंको भूमिवृत्ति दी जायगी उनके दानपत्रों पर राणाके हस्ताक्षरके ऊपर चण्डके खड्गका चिन्ह बना रहेगा। उस समयसे चितौड़के राणे जिसको भूमि देते हैं उसके दानपत्रके ऊपर सालुम्ब्राके § अधिकारी के खड्गका चिन्ह रहता है।

चण्ड महान्, वीर, सहनशील और उदार पुरुष थे, यह बात ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे स्पष्ट प्रकट होती है। पिताके चले जानेपर छोटे भाई मकुल और सम्पूर्ण राज्यके शुभ और उन्नतिके लिये वे बड़ी सावधानी, समझदारी और दक्षतासे राज्यकार्य चलाने लगे; परन्तु यह बात उनकी सौतेली मां (मकुलजीकी माता) को अच्छी नहीं मालूम हुई। उसने सोचा था कि "जबतक पुत्र नाबालिग है तबतक राज्यकाय मैं स्वयं सम्हालूंगी;" परन्तु उसकी यह आशा पूरी नहीं हुई; अतएव उसे बहुत कष्ट जान पड़ने लगा। चण्डके उपकारोंको भूलकर वह उनसे बुरा मानने और उनको राज्यसे बाहर करनेकी चेष्टा करने लगी। कोई दोष न पाकर अन्तमें उसने कहा—"यद्यपि चण्ड स्वयं अपनेको राणा नहीं कहते हैं, परन्तु जिस ढङ्गसे वे राज्यकार्य चला रहे हैं उससे जान पड़ता है कि इस उपाधिका नाम मात्र रहने देनेका उद्योग कर रहे हैं।' यह बात चण्डने भी सुनी। वे अपनी सरलता और पवित्रता जानते थे। वे समझते थे कि जो कुछ वे कर रहे हैं अपने छोटे भाईकी भलाई और राज्यकी उन्नतिके लिये कर रहे हैं। चण्डको यह भी विदित था कि पुत्रके स्वार्थके लिये मकुलजीकी माताका हृदय रात दिन संशय और घबराहटमें रहता है। परन्तु ऐसे निस्स्वार्थ परिश्रमका ऐसा बदला! इतनी सरलता, उदारता और स्वार्थत्यागका यह परिणाम! यदि सब समय ऐसीही दशा हो, तो क्यों कोई किसीके साथ भलाई और उपकारका काम करे?

§ चण्डके वंशधर चन्द्रावत (वा चूंडावत) कहे जाते हैं। इनके अधिपति सरदारके निवासस्थानका नाम सालुम्ब्रा है। मेवाड़के सरदारोंमें सालुम्ब्राके अधिकारी सबसे श्रेष्ठ समझे जाते हैं।

चण्डको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने सोचा कि इस संसारमें कोई भी अपना नहीं है। वे छाती खोलकर शत्रुकी विषमें बुझी छुरीकी चोट सह सकते थे, पर ऐसी बदनामी नहीं। इस अन्यायके दोषारोप और सन्देहके लिये उन्होंने प्रभुकी माताको मीठे शब्दोंमें धिक्कारा और फिर धीरभावसे कहा—"आपको धोखा हुआ है। यदि चित्तौड़का राजसिंहासन लेनेकी मेरी इच्छा होती तो आपको राजमाता क्यों कहता ? अस्तु, इसमें मेरा कुछ हर्ज नहीं है; विशेष दुःख भी नहीं है। हां, केवल इतना अवश्य है कि चित्तौड़राज्य मुझे छोड़ना पड़ता है; भविष्यमें चित्तौड़की क्या दशा होगी यही सोचकर मैं दुःखित हो रहा हूं। जो हो, अब तो जाताही हूं; राज्यके सम्हालनेका भार अब आपहीके ऊपर रहा। देखियेगा—सीसोदीय कुलके मान सम्मानमें अन्तर न पड़ने पावे।" इसके बाद चित्तौड़ छोड़कर उदारहृदय चण्ड मन्दोर राज्यको चले। वहांके राजाने उनका परिचय पाकर यथोचित सम्मान किया और हसूर नामक स्थानका उनको अधिकारी बना दिया।

इस संसारमें कृतज्ञता कहां ?—वह तो स्वर्गीय है। तो क्या इस हिंसा, द्वेष, स्वार्थपरता और विश्वासघातसे भरे हुए अन्धेरे कुवेंमें उस पवित्र स्वर्गीय रत्नका मिलना असम्भव है ? नहीं; परन्तु जिसका हृदय इस दिव्य रत्नसे भूषित हो, जिसमें कृतज्ञता हो, मनुष्य होने पर भी उसे देवता समझना चाहिये; साधारण आदमी होनेपर भी उसे बहुत मानना चाहिये। वीरहृदय चण्डने अपने स्वार्थकी परवा न करके छोटे सौतेले भाईको राज्याधिकारी बना दिया; जो उनका दास होनेके योग्य भी नहीं था उसकी अधीनता उन्होंने स्वीकार की;—संसारमें ऐसे उदार और महान् कितने लोग होते हैं ? इस अपूर्व आत्मत्यागके बदलेमें उन्होंने क्या पाया ? इस हिंसा, द्वेष, स्वार्थपरता और विश्वासघातसे भरे संसाररूपी अन्धेरे कुवेंने उन्हें क्या बदला दिया ? वे पिताका राज्य छोड़कर चले; क्रूरहृदया राजमाताने उनको एकबार रोका भी नहीं; उनको लौटा लानेकी चेष्टा भी नहीं की ! वरन् वह आनन्दित हुई; विशेषकर उसके पिता भाई और पीहरके सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। हा संसार !—मुन्दर नगरसे वे सब धीरे धीरे चित्तौड़में आने लगे। सबसे पहले मकुलका मामा योध * मारवाड़की जलती हुई मरुभूमि

* इसी योध योधपुर (जोधपुर) का स्थापनकर्त्ता है।

छोड़कर उनके मेवाड़ देशमें आया। थोड़े ही दिनोंके बाद उसका (जोधाका) पिता रणमल्ल भी बहुतसे साथियोंके सहित मेवाड़में चला आया। जो सूखे मारवाड़ देशमें रहकर रूखा अन्न खाते थे, वेही अब मेवाड़में आकर गेहूंकी मोठी रोटियों पर हाथ फेरने और बालक मकुलजीकी प्रशंसा करते हुए आनन्दसे रहने लगे।

क्रूर और चालाक लोगोंके हृदयका गूढ़ भाव सब लोग नहीं समझ सकते। तनिक सोचिये तो पाठक कि जो अबतक मारवाड़हीमें रहते, वहीं सब तरहका सुख पाते और उसीकी प्रशंसा करते थे, वे उस "स्वर्गादपि गरीयसी" जन्मभूमिको छोड़कर मेवाड़में क्यों आये? कौन कह सकता है कि किस भले या बुरे मतलब से उन्होंने अपना देश छोड़ा? आगे पढ़ते चलिये, सब वृत्तान्त आपही विदित हो जायगा।—राणा रणमल्ल अपने बालक नाती मकुलजीको गोदमें लेकर वीरवर बप्पारावलके सिंहासन पर बैठते थे। छत्र, चमर, किरण आदि सब चीजें वर्तमान रहती थीं। उस समय राणा रणमल्ल अपने मनमें अनेक प्रकारकी सुख और आनन्दसे भरी बातें सोचते थे। बालक मकुल जब राजसभासे बाहर चला जाता था तब भी वे वहीं सिंहासन पर बैठे रहते थे और सब राज्यचिन्ह तब भी उनके चारों ओर शोभा देते रहते थे। इन बातोंका मतलब समझ कर भी लोग बेसमझ बने रहते थे; कोई साहस करके उनको रोकता नहीं था कि यह सिंहासन दूसरेका है, इस पर आप क्यों बैठते हैं? परन्तु एक व्यक्तिने रणमल्लकी सब चतुराई समझ ली और इस बातसे उसे बहुत दुःख हुआ। वह सीसोदीय कुलकी एक बूढ़ा धाओ † थी; राजकुमार मकुलजीके पालन पोषणका भार उसीके ऊपर था। वह राज्यकी बड़ी शुभचिन्तक थी; वह सोचने लगी—"क्या वीरवर बप्पारावलके सिंहासनके अधिकारी राठौर होंगे? क्या दुष्टोंके विश्वासघातसे सीसोदीय कुल एकदम नष्ट हो जायगा?" अन्तमें अत्यन्त घृणा और दुःखके साथ उसने मकुल

---

† टाड साहब लिखते हैं कि इन धाभियों (दाइयों) का हिन्दू-राजपरिवारोंमें बड़ा आदर मान होता है और इनके लड़कोंका राजपूत राजाओंके साथ "धाई भाई" का सम्बन्ध रहता है। इन धाई-भाइयोंको कुछ भूमि दी जाती है जिसकी आमदनीसे इनकी जीविका चलती है और इनसे दूत आदिके काम लिये जाते हैं।

की माताके पास जाकर कहा—"क्या आप कुछ देखती नहीं हैं ? और क्या कुछ समझती नहीं हैं ? आपके पिता क्या आपके पुत्रका अधिकार छीन लेंगे ?" दासीकी बातोंसे मकुलकी माताके मनमें भी सन्देह उत्पन्न हुआ । आजतक इस बातकी ओर उसका ध्यान नहीं गया था, परन्तु आज उसकी आँखें खुलीं। उसने जब देखा तब उसे मालूम हुआ कि वह बड़े सङ्कटकी अवस्थामें पड़ी है। अतएव वह इस सङ्कटके दूर करनेका उपाय करने लगी। यह बात जानकर दुष्ट रणमल्ल खुल्लम-खुली अपना मतलब निकालनेको तैयार हुआ।

हतभागिनी मकुलकी माता बचावके लिये चारों ओर उपाय ढूंढने लगी; परन्तु उपाय मिलता कहां ?—वह तो पहले ही अपने पांवोंमें आपही कुल्हाड़ी मार चुकी थी। आज यदि चण्ड होते तो किसी विपत्तिकी चिन्ता नहीं थी; किन्तु अब क्या था। अन्तमें कोई उपाय न मिलने पर एकदिन वह स्वयं अपने पिता (रणमल्ल) के पास गई और कड़े तथा अभिमान भरे स्वरमें उसने उनसे इन बातोंका कारण पूछा। रणमल्लने उत्तरमें जो कुछ कहा उसे सुनकर उसका कलेजा कांप उठा और सिरमें चक्कर आने लगा ! उसे निश्चय हो गया कि उसका पिता रणमल्ल उसके पुत्रको मार कर स्वयं राज्यका अधिकारी बनना चाहता है ! इसी अवसर पर रानी (मकुलकी माता) ने सुना कि दुराचारी रणमल्लने चण्डके दूसरे भाई रघुदेवको धोखा देकर मार डाला है। रघुदेवको कैलवाड़ा और करेरिया नामक दो बड़े राज्य वृत्तिमें मिले थे। इनमेंसे वह कैलवाड़ामें रहता था। एक दिन रणमल्लने रघुदेवके पास सम्मानसूचक राजसी वस्त्र भेजे। सम्मानसूचक राजसी वस्त्र पाकर राजपूत उन वस्त्रोंको पहनते हैं। यह उनमें एक प्रसिद्ध शिष्टाचारकी बात है। इसके अनुसार ज्योंही रघुदेव कपड़े पहनने लगा त्योंही बेचारा छुरीसे घायल करके मारा गया ! अधिक क्या कहें, दुष्ट रणमल्लनेही इस रीतिसे उसकी हत्या कराई। रघुदेव बड़ा ही श्रीमान्, धार्म्मिक और साहसी युवापुरुष था। उसके अच्छे गुणों और सुन्दरताके कारण राजपूत उसे इतना अधिक चाहते थे कि उसके इस अचानक मारे जानेसे सारे मेवाड़को अत्यन्त शोक हुआ। मरने पर उसका सम्मान देवताकी तरह हुआ। हरेक मेवाड़वासी उसकी प्रतिमूर्त्ति अपने अपने घरमें स्थापित करके भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करने लगा। हर दिनकी

नवरात्रके अतिरिक्त वर्षमें दो बार रघुदेवकी पूजा विशेष धूमधामसे साथ होती है। इन दोनों अवसरों पर राजासे लेकर राज्यके सामान्य भिक्षुक तक सम्मिलित होते हैं।*

रघुदेवकी दशा सुनकर बालक मकुलजीकी माताकी चिन्ता और घबराहट और भी बढ़ गई। वह समझ गई कि जब उसके दुष्ट पिताने निरपराध रघुदेवकी हत्या कराई है तब वह उसके पुत्रकी हत्या भी शीघ्र अवश्य करावेगा। यह बात समझ कर वह चारों ओर बचावके उपायोंके लिये दृष्टि दौड़ाने लगी, पर वह जिधर देखती थी उधरही नई नई आपदाएँ अपनी भयानक मूर्त्ति दिखा कर उसे डराती थीं। वह शत्रुओं और विश्वासघाती रणमल्लके मित्रोंके बीच घिरी हुई थी। चित्तौड़के राज दरबारमें जो जो बड़े बड़े मान मर्त्तबेके पद थे उन सबोंके अधिकारी उसी दुष्टके सम्बन्धी या पक्षवाले थे। इसके सिवा चित्तौड़ दरबारका सबसे प्रधान पद जैसलमेरके एक भट्टी राजपूतके अधिकारमें था। मतलब यह कि इस समय सभी कोई रणमल्लके वशमें हो रहा था—सभी उसीके हाथके खिलौने बन रहे थे। तो फिर अब रानीका पक्ष लेकर सीसोदीय कुलके गौरव मानकी रक्षा करनेका उद्योग कौन करता? कौन बप्पा रावलके वंशवृक्षकी जड़ काटनेसे रोकता?—कोई नहीं; केवल एक व्यक्ति; वही उदारहृदय साहसी वीर चण्ड। रानीकी आशाएँ धीरे धीरे मिटने लगीं; चारों ओर उसे बुरे लक्षण दिखाई देने लगे। इस समय उसे चण्डकी याद आई; चण्डने जो बातें कही थीं वे भी स्मरण हो आईं। ज्यों ज्यों दिन बीतते थे त्यों त्यों उसका हृदय शून्य होता

* प्रतिवर्ष दशहरेके दिन मेवाड़में एक उत्सव होता है। इस उत्सव पर तथा चैत्र मासके दसवें दिन मेवाड़का प्रत्येक गृहस्थ रघुदेवकी वेदिका साफ करके उसकी प्रतिमूर्त्तिको स्नान कराता तथा उसको वेदिका पर बैठाता है। उस समय राजपूत स्त्रियां उसकी पूजा कर अपने पुत्रोंके सुखकी प्रार्थना करती हैं और सुन्दर पुत्र मांगती हैं। रघुदेवसे पहले बप्पाका कुलेशपुत्र नामक एक वंशधर मेवाड़में गृहदेवीवाला देवता मानकर पूजा जाता था, परन्तु अब उसके स्थानमें क्षेत्रपाल और रघुदेव गृहस्थ देवता माने जाते हैं। जिस तरह मेवाड़में रघुदेवकी पूजा होती है उसी तरह पीलदेशमें गोकोगिलकी होती है।

ाता था और चण्डकी बातें याद कर करके अपनी करनी पर पछताया होता ा। पश्चात्ताप करते और क्षमा मांगते हुए उसने इन सब हैसात्योंकी सूचना ण्ड तक पहुंचवाई। यद्यपि चण्ड बहुत दूर देशमें रहते थे, परन्तु चित्तौड़के ति दिनके समाचार उनको बराबर मिलते रहते थे और सदा वे चित्तौड़की ालाईकी बातें सोचा करते थे। उनको इस बातका पहलेहीसे अनुमान था कि ापदा पड़ने पर मकुलकी माता उन्हें स्मरण करेगी और सहायता मांगेगी—और ाठौरोंसे चित्तौड़का उद्धार करनेके लिये वे एक प्रकार पहलेहीसे तैयार े। इस समय विमाताका पत्र पाकर वे तुरन्त चल पड़े। जिस समय उन्होंने चत्तौड़ छोड़ा था उस समय दो सौ शिकारी भील अपने बालबच्चों तथा परिवार-ालोंको चित्तौड़हीमें छोड़कर उनके साथ चले आये थे। अब चण्डने उनको लाह दी कि तुम उनसे मिलनेके बहाने दुर्गमें प्रवेश करो। उन्होंने ऐसाही किया ौर वहां पहुंच कर द्वारपाल आदिकी नौकरी कर ली। वहां नौकरी करते हुए े चण्डकी सहायता करनेके लिये उपयुक्त अवसर ढूंढ रहे थे। इधर चण्डने ानीको चुपचाप कहला भेजा कि "चित्तौड़के आसपासके गांवोंमें भोजन बांटने े लिये तुम मकुलजी तथा कुछ विश्वासी दास दासियोंको साथ लेकर निकलना। ों भोजन बांटते बांटते एक गांवसे दूसरे गांवमें होती हुई बहुत दूर निकल ाना; परन्तु दीवालीके दिन गोसुण्डा † नामक स्थानमें अवश्य आ जाना; भूलना नहीं; भूलनेसे बड़ी हानि होगी।"

यह सन्देसा पाने पर मकुलकी माताको बहुत भरोसा हुआ और उसका चित्त ठिकाने आया। चण्डकी सलाहके अनुसार काम करनेमें उसने तनिक भी आलस्य नहीं किया, वरन् दूने उत्साहसे सावधानीके साथ उसने वैसाही किया। धीरे धीरे दीवालीका दिन भी आ गया। परामर्शके अनुसार मकुलकी माता अपने विश्वासी साथियों तथा मकुलको लेकर गोसुण्डा नामक स्थानमें पहुंची। दिन भर गांवोंमें भोजन बांटती और सन्ध्याकी प्रतीक्षा करती रही। धीरे धीरे दिन बीत गया, सूर्य अस्त हो गये, चारों ओर अन्धेरा फैल गया, रात आई, तौभी

---

†चित्तौड़से मालवेकी ओर जो रास्ता गया है उसी रास्तेमें चित्तौड़से ७ मील पर गोसुण्डा स्थान है।

चण्ड नहीं आये। पुरोहित, रानी, दाई, उनकी दासी, सब घबराने लगीं। लाचार वे राजकुमारको लिये हुए चित्तौड़की ओर लौट रहे थे इतनेमें सहसा पीछेसे लगातार घोड़ोंकी टापोंके शब्द सुनाई पड़ने लगे। इससे उनको पुनः आशा हो आई। देखते देखते चालीस सवार तेज घोड़ों पर चढ़े उनके आगेसे होकर निकल गये। उन सबके आगे चण्ड थे। चण्ड जब मकुलके पास आये तो दूरहीसे सम्मानकी रीति पर उन्होंने ज़रासा सिर झुका लिया। वे इस समय बनावटी वेषमें थे। अन्तमें थोड़ीही देरमें अपने साथियोंको लिये हुए वे चित्तौड़ दुर्गके द्वार पर पहुंच गये। इस समय उनके साथ बहुत थोड़ेसे चुने हुए लोग थे; बाकी साथी पीछे थे। अबतक किसीने उनको रोका नहीं था; परन्तु "रामपोल" नामक द्वारपर पहुंचतेही आगे बढ़कर द्वारपालोंने इनका परिचय पूछा। चण्ड उत्तरमें बोले, "हम सब राजपूत सरदार हैं; इस चित्तौड़के समीपके गांवोंमें रहते हैं। राजकुमारके साथ गोसुण्डा गये थे; इस समय उनको दुर्गके अन्दर तक पहुंचाने आये हैं।" यह बात सुन कर सबका सन्देह दूर हो गया और ये लोग बिना किसी रुकावटके दुर्गके अन्दर चले। परन्तु जब बाकी लोग भी जो पीछे थे आ गये तब तो द्वारपालोंका सन्देह बहुत बढ़ गया; वे समझ गये कि इन बातोंका क्या अभिप्राय है। ऐसा सन्देह मनमें उठतेही वे तलवार खींचकर खड़े हो गये। इधर भी झनाझन तलवारें खिँच गईं। दोनों दलोंमें खूब लड़ाई होने लगी। जो चण्डके मित्र थे वे इनका शब्द सुनकर इनके दलमें आ मिले और द्वारपालोंको मारने काटने लगे। इस अवसरमें चतुर चण्डने दुर्गके अधिकारी भट्टी सरदार पर आक्रमण कर उसे बांध लिया। बड़े क्रोधमें भरा हुआ वह चण्डके सामने आया था, परन्तु ठहर न सका; तब दूरसे उसने चण्ड पर अपनी खूनी तलवार फेंकी, जो जाकर चण्डके शरीरमें घुस गई। जहां वह तलवार जाकर लगी थी वहांसे खूनकी धारा बहने लगी; परन्तु तेजस्वी चण्डने उसी समय उसे धर दबाया। सब द्वारपाल मारे गये और प्रत्येक राठौर ढूंढ ढूंढ कर पकड़ पकड़ कर निठुरतासे बध किया गया।

उस चतुर्दशीकी अन्धेरी रातमें कदाचित् ही एक दो राठौर वीर चण्डके प्रचण्ड आक्रमणसे बचे होंगे। उस अवसर पर अभागा रणमल्ल किस प्रकार मारा गया

सका हाथ पकड़कर हँसी आये बिना नहीं रहती। उस दुष्टने अपनी कन्याकी सी सहेलीकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर बलपूर्वक उस बेचारी सतीका धर्म नष्ट कया था। इन बातोंके विषयमें वह कुछ भी नहीं जानता था कि बाहर क्या क्या टनाएँ हुई हैं और किस किस प्रकार उसके पक्षपाती मारे गये हैं। मदिरा, अफीम और प्रेमके नशेमें चूर वह बुड्ढा उस सहेलीके गलेमें बांह डाले पड़ा था। वह नहीं जानता था कि लोग उसके पकड़नेको आ रहे हैं। जिस सतीका सतीत्व उसने नाश किया था वह उसको दुष्टताका बदला चखानेके लिये अवसर ढूंढ रही थी। आज उसे अवसर मिला। धीरे धीरे चारपाईसे उठ उसने दुष्ट रणमल्लको उसीकी पगड़ीसे * खूब कसकर उसी चारपाईके साथ बांध दिया जिसपर वह सोया था; परन्तु इतने पर भी उसकी नींद नहीं खुली। इस प्रकार रणमल्लको बांधकर वह राजपूतबालिका वहांसे चली गई। थोड़ी देरमें चण्डके सैनिक यमदूतकी तरह वहां जा पहुंचे। तब भी वह नहीं जागा! परन्तु जब वे ज़ोरसे चिल्लाये, तब उसका नशा दूर हुआ। उसने नेत्र खोलकर देखा तो चारों ओर शत्रु नङ्गी तलवार लिये खड़े दिखाई दिये। क्रोधमें भर कर उसने पलंगसे उठना चाहा; परन्तु वह तो प्यारीके कठोर प्रेमबन्धनमें जकड़ा हुआ था; उससे उठा कैसे जाता? उसने बहुत यत्न किया, पर बन्धन नहीं टूटा। तब वह पलँगके साथ बँधा बँधाया उठ खड़ा हुआ। यह भी एक विचित्र दृश्य था। पासही एक पीतलका गिलास पड़ा था; और कोई अस्त्र न पाकर उसने उसीको उठा लिया और उसीसे दो एक सिपाहियोंको घायल करके गिरा दिया। परन्तु अनगिनत शत्रुओंके बीच वह कब तक बचा रहता? शीघ्रही बन्दूककी एक गोली † उसके शरीरमें आकर लगी, जिसने उसे एकदम ठण्ढा कर दिया। उसका पुत्र योधराव नगरके दक्षिण भागमें था; वह

* मारवाड़ी पगड़ियां ६० हाथ तक लम्बी होती हैं।

† बहुत लोग समझते हैं कि प्राचीन कालमें आजकलकी तरह तोपें और बन्दूकें नहीं थीं और पुराण आदि ग्रन्थोंमें आग्नेय अस्त्रोंका जो उल्लेख है वह कल्पित और झूठा है! हम कह सकते हैं कि जो लोग ऐसा समझते हैं वे भूलते हैं;—वे माननीय प्राचीन आर्यजातिके विषयमें कुछ नहीं जानते। दुःखकी बात है कि ऐसे लोग दूसरोंकी सुनासुनी या दूसरोंकी देखादेखी कितनोंको

कर, उस हुम्मा सुन एक तेज घोड़े पर सवार होकर भाग गया । -उस दीवालीके अवसर पर, कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको, रातके समय, राठौर वीर रणमल्लको आ हुए और सीसोदीय कुलका सितारा चमका ।

परन्तु तेजस्वी चण्डने इतने पर भी नहीं छोड़ा । योधरावके भागने पर उसको पकड़नेके लिये वे उसके पीछे पीछे मन्दोरकी ओर गये । चण्डका सामना न करके अन्तमें योधराव हरबासांखल नामक एक पराक्रमी राजपूतके यहां गया और वहां उसने शरण ली । इधर चण्डने अकस्मात् मन्दोर नगर पर अधिकार कर लिया और जबतक वहांके पूर्व अधिकारीके दो पुत्र कण्टोटजी और सुजाजी नई सेनाएं लेकर नहीं आये तबतक वे वहांसे नहीं हटे । इस अवसर पर राठौरोंको पराजय करके चण्डने जिस मन्दोर नगर पर अधिकार किया वह १२ वर्ष तक सीसोदीय कुलके अधीन रहा । १२ वर्षके बाद राठौरोंने पुनः उसे प्राप्त किया । इस योधपुर

असार और असत्य बातों पर विश्वास कर लेते हैं । हम निस्सङ्कोच कह सकते हैं कि प्राचीन हिन्दू तोपें बन्दूकें बनाते थे और इनको काममें लाना भली भांति जानते थे । प्रमाणके लिये यहां शुक्रनीतिसे कुछ श्लोक उद्धृत किये जाते हैं । पाठक देखें कि इन श्लोकोंमें तोपों और बन्दूकोंका वर्णन किस स्पष्टताके साथ किया गया है । इन श्लोकोंमें बन्दूकका नाम 'क्षुद्रनालीक' और तोपका 'बृहन्नालीक' लिखा गया है । जैसे,—

"नालीकं द्विविधं ज्ञेयं बृहत्-क्षुद्र-विभेदतः ।
तिर्यगूर्ध्वं छिद्रमूलं नालं पञ्चवितस्तिकम् ॥
मूलाग्रयोर्लक्ष्यभेदि तिलबिन्दुयुतं सदा ।
युक्ताक्षेपाङ्गवुध्नञ्च मध्याङ्गुलिविलान्तरम् ॥
स्वान्तेऽग्निचूर्णसन्धात्री शलाका संयुतं सदा ।
लघुनालीकमप्येतत् प्रधार्यं पत्तिसादिभिः ॥
यथा यथा तु त्वक्सारं यथास्थूलविलान्तरम् ।
यथा दीर्घं बृहद्गोलं दूरभेदि तथा तथा ॥
बृहन्नालीकसंज्ञन्तत् काष्ठ बुध्न-विवर्जितम् ।
प्रवाह्यं शकटाद्यैस्तु सुयुक्तं विजयप्रदम् ॥" (शुक्रनीति)

जोधपुर) के भावी स्थापनकर्त्ता जोधरावका वृत्तान्त छोड़कर मेवाड़के इतिहास
ो वालें इस स्थान पर लिखते, परन्तु एक प्रधान बातका पहले वर्णन कर देना
ावश्यक है । इस समय सीसोदियों और राठौरोंमें जो भयानक झगड़ा हुआ
सकी भीतरी घटनाएँ इस प्रकार एकसाथ गुंथी हुई हैं कि उनमेंसे एकको भी
ोड़ देनेसे उनकी आवश्यकता और सुन्दरता छूट जाती है; अतएव कुछ देरके लिये
म पाठकोंसे उसके लिखनेकी अनुमति मांगते हैं । यहां पर वेही सब वृत्तान्त
हने जायँगे कि सीसोदियोंने क्योंकर गोद्वार प्रदेश प्राप्त किया और किस रीतिसे
ाठौर वीरोंने छिने हुए मन्दोर नगरका पुनः अधिकार पाया । इसके बाद हम
फर मकुलजीके राज्यके विषयमें लिखने लगेंगे ।

अंगरेजोंके एक विद्वान्का कथन है कि 'Sweet hre the uses of adversity:',
र्थात् विपत्तिका उपयोग अच्छा फल देनेवाला होता है । वास्तवमें जो लोग
वेपत्तिकालमें समझ बूझकर काम करते हैं उनको शीघ्र सुख प्राप्त होता है ।
ाठौर वीर योधराव राज्यसे निकाला गया; उसके भाई, बन्धु, सहायक, मित्र,
ब उससे छूटे; बड़ी भारी विपत्ति उसके ऊपर आ पड़ी । परन्तु वेही लोग
मझदार हैं जो विपत्तिसे घबराते नहीं; किन्तु धैर्य धर कर, ईश्वर पर विश्वास
ख कर, उस विपत्तिके टालनेका उपाय करते हैं । यदि कापुरुषोंकी तरह योध-
ाव घबरा जाता तो कौन कह सकता है कि राठौरोंके भाग्यकी क्या दशा होती?
ौन परम प्रसिद्ध योधपुर नगर स्थापित करता ? उसके चारों ओर शत्रु थे, चारों
ओर विपत्तियां थीं; परन्तु भाग्य पर भरोसा करके उसने धैर्य रखा; साहस और
लसे सब विपत्तियों दूर भगा दिया और अन्तमें ईश्वरकी कृपासे यश, धन, राज्य
और सब प्रकारका सुख पाया * ।

* एक अंगरेज कवि कहता है,—

"Haste not rest not calmly wait ;
Meekly bear the storms of fate.
Duty be thy polar guide ;
Do the right, whatever be tide.
Haste not rest not conflicts past ;
God shall crown thy work atlast."

(भावार्थ पृष्ठ १८४ में)

आगे लिखा जा चुका है कि चौधराव जब चित्तौड़से भागा तब हरबाम्ह नामक एक वीर राजपूतके यहां जाकर उसने शरण ली। राजस्थानमें एक प्रका की धर्मसमिति है। इस समितिमें जो लोग सम्मिलित होते हैं वे विवाह न करते; जन्म भर क्वांरे रहते हैं। यद्यपि वे क्षत्रिय होते हैं, तथापि क्षत्रियोचि वीरधर्मके साथ साथ साधुधर्म मिलकर इनके जीवनको पवित्र और शान्त क देता है। इनके धर्मका मूल मन्त्र अतिथिसत्कार और परोपकार है। अधिक रा बीत जाने पर भी यदि कोई अतिथि इनके आश्रम पर आवे, तो ये राजपू संन्यासी उसका यथोचित आदर मान करेंगे और जैसे सम्भव होगा वैसे उसके खा पीनेका सामान जुटावेंगे। इससे यद्यपि कभी कभी इनको बिना खाये बिना सो जमीन पर पड़े रहना पड़ता है, तथापि इन बातोंको वे तनिक भी कष्ट नहीं समझते। यदि इनका शत्रु भी विपत्तिमें पड़कर इनकी शरणमें आवे तो सब शत्रुता भूलकर उससे भाईकी तरह मिलते हैं और विपत्तिसे उसका उद्धा करनेमें अपने प्राण तक देनेको तैयार हो जाते हैं। वीर हरबाम्हल इन्हीं शान् चित्त परोपकारी राजपूतोंके दलमें था। इस सम्प्रदायकी शाखा प्रशाखाएं इस समय भी रजवाड़ेके अनेक स्थानोंमें देख पड़ती हैं। ऊंचे ऊंचे पर्वतोंकी गुफाओं भीषण जङ्गलों, जलते हुए रेगिस्तानों, या शान्तिसे पूर्ण मनोहर तपोवनों— सभी जगहों में इन महात्माओंके पवित्र आश्रम पाये जाते हैं। इनकी अतिथिसेव "सदाव्रत" के नामसे प्रसिद्ध है। सदाव्रतकी रीति केवल इन्हींमें नहीं है; वर

जल्दी औ आलस तजो, मनमें राखो धीर।
शान्तचित्त ह्वै सहहु नित, जो कुछ कर तगदीर॥
जल्दी औ आलस तजो, बिसरो पिछले दुःख।
ईश-कृपातें पाइहो, यश धन औ बहु सुख॥

संस्कृतके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "सुभाषितरत्नभाण्डागार" से भी धीरप्रशंसा विषयक एव श्लोक उद्धृत करते हैं,—

स एव धन्यो विपदि स्वरूपं यो न मुञ्चति।
त्यजत्यर्ककरैस्तप्तं हिमं देहं न शीतताम्॥

सु० र० भा० पृष्ठ ११० (तृतीये संस्करणे)

ाजा, प्रजा, सरदार, सामन्त सबमें है। मेवाड़की इस वर्त्तमान गिरी हुई अवस्था भी राजा प्रजा दोनों "सदाव्रत" में सहायता करते हैं।

बहुतसे विदेशी सज्जन कहते हैं कि जो लोग आधे असभ्य होते हैं वेही अतिथि-त्कार करते हैं! भाई, यदि आप कुटिलता; कपटता और स्वार्थपरताहीको भ्यता समझते हों,—यदि किसी भूखे भाईको भोजन न देकर अपना ही पेट रनेवालेको आप सभ्य कहें—तो क्षमा कीजिये, ऐसी सभ्यताकी आवश्यकता हमें हीं है। यदि हरवाप्रहल जैसे संसारप्रेमिक परोपकारी लोग आधे सभ्य समझे ायँगे तो फिर पूरा सभ्य इस संसारमें और कौन कहा जायगा? अच्छे हने कपड़े पहननेसे यदि कोई सभ्य कहा जाय तो वह मानुषिक सभ्यता नहीं , वह जानवरोंकी सभ्यता है। हरवाप्रहल जैसे परोपकारी महात्मा दूसरोंके ाथ भलाई करके जो सुख पा गये, उसका पासंग भी आजकलके सुसभ्य कह-ानेवाले स्वार्थी लोग नहीं पा सकते।

दोपहर रात बीत गई थी। सदाव्रतके दैनिक कार्य समाप्त करके संन्यासी रवाप्रहल विश्राम कर रहा था;—इतनेमें १२० आदमियोंको साथमें लिये हुए ोधराव उसके आश्रम पर पहुंचा। तुरन्त हरबाने उठकर सबको आदरके साथ ठाया। जब सब बैठ गये तब वह सोचने लगा कि इनके भोजनका प्रबन्ध इस मय क्योंकर होगा। घरमें जो कुछ खानेकी चीज थी वह समाप्त हो चुकी थी; ासपास कोई गांव या नगर भी नहीं था जहां जाकर वह भोजनकी सामग्री रीद लाता। चिन्ता करते करते अन्तमें उसने एक उपाय सोच लिया। उसके रमें मुज्द * नामकी एक प्रकारकी रंगीन लकड़ी थी। यह लकड़ी रंग निकाल र दूसरी लकड़ियोंके रंगनेके काममें लाई जाती थी; परन्तु जब अकाल पड़ता ा तब राजपूतानेके गरीब लोग इस (लकड़ी) को खाकर अपने प्राण बचाते

* विख्यात सालोमनने जिस लकड़ीसे अपने देवता 'जिहोवा' का मन्दिर नवाया था उसका नाम "अल-मुज" है। टाड साहब कहते हैं कि 'अल' उपसर्ग स जगह विशेषणकी रीतिपर व्यवहृत हुआ है (The prefix *al* is merely the article). इधर गुजरातके इतिहाससे पता लगता है कि वहांके 'आदिनाथ" ा मन्दिर उस "मुज" या "मुज्द" लकड़ीका बना हुआ है। तो क्या इन दोनों

है। कोई सामग्री न पाकर अन्तमें हरबाग्रहलने उस "मुजद" लकड़ीको ही भोजन की वस्तुकी रीति पर काममें लाना निश्चित किया । बहुतसी लकड़ियां चूर कर मैदा चीनी और मसालेके साथ मिलाई गईं । फिर इन सब वस्तुओंको एकसाथ पकाने पर एक प्रकारका स्वादिष्ट भोजन तैयार हो गया । उस भोजनको राजकुमार योधराव तथा उसके साथियोंके आगे रखकर संन्यासी हरबाग्रहलने बड़ी नम्रताके साथ कहा,—"भिक्षासे जो कुछ अन्न मिला था उसका अधिक भाग दिनमें ही समाप्त हो गया था; इस समय जो कुछ बचा था उससे एक प्रकारका भोजन तैयार करके आपके आगे उपस्थित करता हूं। रात अधिक हो गई है; कोई उपाय नहीं है; आज इसी भोजनसे सन्तोष कीजिये; कल सवेरेही उत्तम भोजनका प्रबन्ध कर दूंगा।" हरबाग्रहलकी नम्रता और सीधापन देखकर योधराव और उसके साथी बहुत सन्तुष्ट हुए और उसकी प्रशंसा करके भोजन करने लगे। भोजनके बाद वे सोये; फिर नींदने उनपर ऐसा प्रभाव डाला कि उनको कुछ भी होश न रहा। ऊपर लिखा जा चुका है कि मुजद लकड़ीसे रंग निकाला जाता है; सो अब वे खा पीकर सोये तो उस लकड़ीके रंगसे उनकी मूछें एकदम रंग गईं। सुबह जब वे उठे तब एक दूसरेके मुखको ओर आश्चर्यके साथ देखने लगे। जिस प्रकार उनकी मूंछें रंग गईं यह बात कोई समझ नहीं सका। चतुर हरबाग्रहलने ऐसा होनेका ठीक कारण न बतलाकर उनको उत्साहित करनेके अभिप्रायसे कहा कि "जिस प्रकार वृद्धावस्थाके सफेद बाल सुन्दर नये रंगमें रंग गये उसी प्रकार मैं निश्चय कहता हूं कि आप लोगोंका भाग्य नवीन जीवन प्राप्त करेगा और आप पुनः मन्डोर नगरके अधिकारी होंगे।"

हरबाग्रहलकी बातसे उत्साहित होकर योधरावने तुरन्त उसे अपने दलमें मिला लिया; इसके बाद उसको साथ लेकर वह 'मेवो" के सरदारके पास गया।

मन्दिरोंकी लकड़ियां एकही तरहकी हैं ?—सम्भव है। क्योंकि History of the World में लिखा है कि फिनीसिया और मिस्र देशके व्यापारी खरीद बिक्री करनेके लिये भारतवर्षमें आते थे, सम्भव है कि वेही उक्त लकड़ी सौराष्ट्रसे ले गये हों। कहा जाता है कि यह लकड़ी कभी खराब नहीं होती; यहां तक कि आग से भी नहीं जलती। इसका रंग तांबेकी तरह होता है।

इस सरदारके अस्तबलमें एकसौ चुने हुए घोड़े थे । इस सरदार तथा पवनजी नामक एक दूसरे स्वाधीन राजपूत अधिकारीने अपने कोयलेकी तरह काले घोड़े † पर सवार होकर योधरावका साथ दिया। इस प्रकार और भी कई राजपूत सरदारोंकी सहायता पाकर योधरावने अपने पिताके राज्य सुन्दर व मन्दोरका उद्धार करना निश्चित किया और दल बलके सहित उस ओर वह चला। चण्डके दोनों पुत्र इस चढ़ाईके विषयमें कुछ नहीं जानते थे । अतएव वे निश्चिन्तताके साथ आराम कर रहे थे इतनेमें सहसा योधरावने आक्रमण कर दिया। परन्तु इस आकस्मिक आक्रमणसे सीसोदीय वीर ज़रा भी नहीं घबराये, वरन् साहसपूर्वक उन्होंने शत्रुओंका सामना किया। कण्टोटजी आदिने यह नहीं सोचा कि योधराव किस प्रकार इतनी बड़ी सेना इकट्ठी कर सका और उसके साथ कौन कौन वीर हैं; किन्तु उनको बहुत सामान्य शत्रु समझ कर उनका सामना किया। इस अपरिणामदर्शिता और नासमझीका फल शीघ्र इनको मिल गया। कमसमझ कण्टोटजी बहुतसे सैनिकोंके साथ लड़ाईमें मारा गया; उसका छोटा भाई सुवा जो बचावका कोई उपाय न देखकर एक तेज घोड़े पर सवार होकर भागा; पर योधरावने उसे भी नहीं छोड़ा; गोडार राज्यकी सीमामें वह पहुंचाही था कि योधरावने पीछा करके उसे पकड़ा और मार डाला। इस प्रकार राठौर-वीर योधरावने पिछली बातोंका बदला लिया; परन्तु यदि विचार कीजिये तो स्पष्ट मालूम होगा कि यह बदला दोनोंके लिये बराबर नहीं हुआ; क्योंकि मन्दोरके एक राजपूत सरदारके बदले चित्तौड़के दो राजकुमार हत हुए।

पिताके राज्यका उद्धार कर तथा बदला लेकर भी योधराव निःशङ्क नहीं हुआ। उसे रात दिन ऐसा जान पड़ता था कि मानों चण्ड भयानक मूर्त्ति बनाये हुए उसके पीछे पीछे दौड़ रहे हैं । जब वह किसी प्रकार निश्चिन्त न हो सका तब अपनी अवस्थाकी गूढ़ बातें विचारने लगा । उसने देखा कि चण्डके मुकाबलेमें उसकी सेना और बल कुछ नहीं है; उसे दूसरोंके बल और सहायताके भरोसे पर काम करना पड़ता है और चण्ड स्वाधीन हैं । मान लिया जाय कि उन्होंने दो चार बार सहायता की, पर जब मेवाड़की विशाल सेना सिरपर आ पड़ेगी तब

† 'Coal-black' steed.

क्या होगा? विशेष कर जब उसका पिता रणमल्ल ही झगड़ेका प्रधान कर्त्ता और उत्तेजक था तब उसीका दोष अधिक समझना चाहिये; ऐसी अवस्थामें यह झगड़ा और द्वेष मिट जाना ही उचित है।—ऐसी बुद्धिमानीकी बातें विचार कर योधरावने चण्डसे सन्धि करली और मण्डकाटीमें * (अर्थात जो खूनखराबी इसने की थी उसके बदलेमें) सम्पूर्ण गोड्वार प्रदेश देना स्वीकार किया। चण्डका द्वितीय पुत्र मुञ्जाजी जिस स्थानमें मारा गया था वही जगह मेवाड़ और मारवाड़ राज्यकी सीमाचिह्न मानी गई। इस प्रकार सन्धि करके दोनों पिछली बातें भूल गये और कुछ दिनोंतक बड़े मित्रभावसे रहे। इस अवसर पर चण्डको जो गोड्वार प्रदेश मिला वह तीनसौ वर्ष तक मेवाड़के अधीन रहा। फिर जिस तरह प्राचीन उत्तराधिकार विधिमें गड़बड़ पड़नेसे गोड्वार मेवाड़ेश्वरको मिला था उसी कारण तीन शताब्दी बाद वह उनके हाथसे निकल भी गया।

उदारहृदय वीर चण्डकी सहायतासे मकुलजीके सौभाग्यका सूर्य उदित हुआ; पर वह शीघ्र अस्त भी हो गया। पूरे तेजतक पहुंचते न पहुंचते उस सौभाग्यरूपी सूर्यको राहु लग गया और मकुलजीका अधःपतन हुआ। यद्यपि थोड़ीही उमरमें मकुल अच्छे अच्छे गुणोंसे भूषित होकर राज्यकार्य्य चलानेके योग्य हो गया था; पर उसका यह गौरव अधिक दिन न रहा। जिस समय (सन् १३९८ में) उसने चित्तौड़का सिंहासन प्राप्त किया था उस समय भारतकी कुछ और ही दशा थी; भारतका ऐतिहासिक बहाव एक नवीन दिशाको जा रहा था। तैमूर लङ्ग मध्य एशियाके राज्योंमें चगताई खान्दान स्थापित कर चुका था और अब भारतवर्ष पर उसने आक्रमण किया था। यह आक्रमण उसने देहली पर किया, अतएव मेवाड़को उससे कुछ भी क्षति नहीं हुई। भट्टग्रन्थोंसे केवल इतना पता लगता है कि देहलीके अधिकारी फीरोजशाहने इस समय मेवाड़ पर चढ़ाई करनेका उद्योग किया था, परन्तु उसका उद्योग सफल नहीं हुआ। किन्तु जाँच करनेसे मालूम होता है कि भट्टकवियोंने जिसे फीरोजशाह कहा है वह असलमें उसका पोता

* "मुण्डकाटी" अर्थात् हत्या करनेका मूल्य। यह राजपूती शब्द है। ऐसी प्रथा प्राचीन जर्मनों और सैक्सनोंमें भी प्रचलित थी।

था। जो इस समय मेहतवियोंमें मूल की है*। भारतका इतिहास पढ़नेसे हमारा लिखना ठीक मालूम होगा। तैमूरके सामने न ठहर सकनेपर फीरोजशाहका पुत्र जोता देखकरके गुजरातकी ओर भागा था; अतएव यह सम्भव है कि रास्तेमें मेवाड़ पड़नेके कारण उसने उसपर चढ़ाई करनेका उद्योग किया हो। जो हो, चाहे किसीने चढ़ाई करनेका उद्योग किया हो, परन्तु राणा मकुल यह बात पहले से जान गये थे और इसलिये अरावलीके पार रामपुर नामक स्थानमें उन्होंने शत्रुओंका मुकाबला किया था। वहां इस वीर राणाने ऐसी वीरता दिखाई कि मुसलमान सैनिकोंको भाग जातेही बन पड़ा, पर इससे भी उनका छुटकारा नहीं हुआ; राणाने बहुत दूर तक उनका पीछा किया और सांभर झील † तथा सांभर राज्य अपने अधिकारमें कर लिया। राणा मकुलको अपना राज्याधिकार बढ़ानेका इस समय अच्छा अवसर मिल गया था। इसने अपने समयमें कई सुन्दर अट्टालिकाएँ और बहुमूल्य स्तम्भ बनवाये। उनमें राणा लाखका भवन ‡ और चतुर्भुजा देवीका मन्दिर प्रसिद्ध हैं।

राणा मकुलके तीन पुत्र और एक बहुतही रूपवती कन्या थी। उस लड़की का नाम लालबाई था। उसका विवाह गागरोनके खीची सरदारके साथ हुआ। खीची सरदारने विवाह करते समय राणा मकुलसे कहा था कि—"मैं आपसे इसके सिवा कुछ नहीं चाहता कि आप प्रतिज्ञा करें कि यदि मेरे राज्य पर शत्रु आक्रमण करेंगे तो आप मेरी सहायता करेंगे।" राणा मकुलने यह बात स्वीकार कर ली थी। इस विवाहके कई वर्ष बाद मालवेके सरदार होशङ्गने गागरोन पर आक्रमण किया; उस समय खीची सरदारका पुत्र धीराज मकुल राणाके पास प्रतिज्ञानुसार सैनिक सहायता लेने आया। राणा मकुल मादेरियाके विद्रोहियों

* इसका नाम मुहम्मद तुगलक था। यह फीरोजशाह तुगलकके प्रथम पुत्र नसीरुद्दीनका छोटा बेटा था।

† देखिये पृष्ठ ५४ का फुटनोट।

‡ इस महलके बननेका कार्य्य आरम्भ होनेके बादही राणा लाखका देहान्त हो गया था। यह महल इस समय एकदम गिर गया है तौभी इसके टूटेफूटे चिन्होंसे इसकी पुरानी शोभाका पता लगता है।

को आज्ञा करनेके लिये अपनी मुख्य सेना लेकर गये थे । चौरान वहीं आकर उनसे मिला और जितनी आवश्यकता थी उतनी सेना लेकर लौट गया। इसी समय अर्थात् मादेरियामें राणा मकुलका जीवन समाप्त हुआ। दो दुष्टोंने धोखा देकर उनके प्राणोंका नाश किया। उन दोनोंमें एक "चाचा" था, दूसरा "मैर"। इन दोनोंने बिना कारण बेचारे भोलेभाले राणाकी हत्या की।

ये दोनों दुष्ट ("चाचा" और "मैर") राणा मकुलके पितामह राणा खेतसिंह की किसी नीच जातिकी रखेल स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । बहुतोंका कथन है कि वह रखेल औरत जातिकी बढ़इन थी । मेवाड़में दासीपुत्र "पञ्चम पुत्र" कहे जाते हैं। राजाके वीर्य्यसे उत्पन्न होने पर भी उनका कुछ सम्मान नहीं होता और यद्यपि कभी कभी राजाकी कृपासे उनको अच्छे पद मिल जाते हैं, किन्तु इतने पर भी दूसरी श्रेणीके सरदारोंकी जो प्रतिष्ठा होती है उससे भी उनकी कम प्रतिष्ठा होती है । यही दशा "चाचा" और "मैर" की भी थी । मेवाड़के सब शुद्ध सरदार इन दोगलोंसे बहुत घृणा करते थे, परन्तु तौभी राणाजी कृपा करके ७०० सवारोंका अफसर बनाकर इन दोनोंको युद्धक्षेत्रमें ले गये थे । दासीपुत्रों पर राणाकी इतनी कृपा देखकर सरदारोंको डाह होने लगी; वे मनमें विचारने लगे कि "चाचा" और "मैर" की अनुचित उन्नति हुई है। यह सोचकर वे इन दोनों को इनके पदोंसे अलग करानेका उद्योग करने लगे। परन्तु इसका इतना बुरा फल हुआ कि स्वयं राणाको अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा। मादेरियाके विग्रहके समय राणा मकुल अपने सरदारों, सामन्तों और सैनिकोंके साथ एक आनन्दकुञ्जमें बैठे थे, इतनेमें उनकी दृष्टि एक प्रकारके वृक्ष पर पड़ी जिसे उन्होंने कभी देखा नहीं था; अतएव सबसे वे उस वृक्षका नाम पूछने लगे । चौहान सामन्त पासही बैठा था; वह नाम जानता था; पर जानकर भी उसने नहीं बताया; किन्तु कहा—"महाराज, मैं नहीं जानता । आप इन दोनों भाइयोंमेंसे किसी एकसे पूछिये; तुरन्त ठीक उत्तर मिल जायगा।" भोले राणाजीने उस चौहान सामन्तकी कुटिल बातका गूढ़ मतलब न समझ कर बड़े सीधेपनसे "चाचा" और "मैर" से पूछा—"काका, इस पेड़का क्या नाम है?" राणाने यह प्रश्न निष्कपट चित्तसे किया था; परन्तु उन दोनोंने इसे दुभाली समझा। वे मनमें आपही आप

लगने लगी—"चमकोण गढ़पतकी गर्भसे उत्पन्न हुए हैं इसीलिये राणाजी उनको दुर्वचन प्रयोग कर रहे हैं।" उनका यह विश्वास धीरे धीरे बढ़ने लगा और वे एक-दम क्रोधमें भर गये। उसी दिन सन्ध्याके समय राणा सन्ध्या पूजन आदि करते बैठे ईश्वरके नामकी माला फेर रहे थे, इतनेमें एकाएक इन दोनोंने पहुँचकर उनको मार डाला! इस प्रकार बेचारे भोले राणाको मारकर ये दोनों अपने घोड़ोंपर सवार होकर चित्तौड़की ओर चले। इन्होंने सोचा कि चलकर चित्तौड़ पर भी अधिकार कर लेंगे; परन्तु दुष्टोंका यह मतलब सिद्ध नहीं हुआ। जब ये चित्तौड़के सामने पहुँचे तब उन्होंने देखा कि फाटक बन्द है।

ऊपर लिखे श्लेष प्रश्नके अतिरिक्त यद्यपि राणा मकुलके मारे जानेका दूसरा कोई स्पष्ट कारण मालूम नहीं होता; तथापि विचार करनेसे विदित होता है कि उनकी हत्याके लिये बड़ा भारी जाल फैलाया गया था। इन बातोंको केवल मकुल-जीका ज्येष्ठ पुत्र चण्ड जानता था और इसीलिये उसने दुष्ट "चाचा" तथा "मेर" के आनेसे पहलेही चित्तौड़के द्वार बन्द करा दिये थे। तब ये दोनों वहांसे लौट-कर मादेरियाके निकटके दुर्गमें गये। इधर बालक कुम्भने उपस्थित विपत्तिसे अपना बचाव करनेका दूसरा उपाय न देखकर मारवाड़-नरेशकी मित्रता और प्रेम पर भरोसा किया।

अहा, राजपूतोंके चरित्रकी कैसी अद्भुत महिमा है। जिन सीसोदियोंने राठौर राजाको मारा और उसका राज्य छीन लिया था उन्हीं सीसोदियोंके वंशधर कुम्भ-ने आज विपत्तिमें पड़कर राठौरनरेशके पुत्रसे सहायताकी प्रार्थना की। उदार राठौरअधिकारीने पिछली बातोंकी चिन्ता छोड़कर प्रतिज्ञा की कि "जबतक दोनों राजघाती दुष्टोंसे बदला लेकर बालक कुम्भको चित्तौड़के राजासन पर न बिठा लूंगा तबतक सिरसे पगड़ी नहीं उतारूँगा और न चारपाई पर सोऊँगा।" वास्तवमें, वीर राजपूतोंकी जीवनीमें ऐसी उदारता, महत्ता और सत्यप्रतिज्ञाके अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। राजपूत स्वभावसे तेजस्वी होते हैं, या यों कहिये कि तेजस्वी होना राजपूतोंमें स्वाभाविक बात है। एक छोटेसे आघातसे भी उनका हृदय धूम जाता है और जबतक वे उस आघातका बदला नहीं ले लेते तबतक किसी तरह उनको शान्ति नहीं मिलती। जिस बातकी वे प्रतिज्ञा करते हैं उसे

[illegible] भी निश्चिन्त होते हैं, [illegible] वे आनन्दमें [illegible] हैं [illegible] जाई फिर मिल जाते हैं। उस समय भट्टकवि (या भाट) दोनों पक्षोंको मिल-[illegible] कुलकी प्राचीनमें बांधकर लोगोंके गुणकी प्रशंसा करते हैं, जिसको सुनकर राजपूत वीरोंको अपूर्व आनन्द होता है और मूँछें उमेठते हुए वे सब पिछले कष्ट, दुःख, विपत्ति और विरोध भूल जाते हैं।—अत्यन्त प्राचीनकालसे राजपूतोंकी यही रीति चली आती है और जबतक उनमें [illegible] छोटेसे छोटा अंश भी उनमें वर्तमान रहेगा तबतक यह न बदलेगी।

आवश्यकता देखकर राणा मकुलके बालक पुत्र कुम्भने मारवाड़नरेशसे सहायता मांगी। उसने दुराचारियोंको दमन करनेके लिये अपने पुत्रकी अध्यक्षतामें कुछ सेना भेजी। शत्रु इस समय उनके राज्यकी सीमाके निकटही थे; अतएव राजकुमारने थोड़ेही समयमें जाकर उनपर आक्रमण किया। लड़ाईमें न ठहर सककर दुष्ट "चाचा" और "मेरा" वहांसे पाई नामक स्थानको भागे। पाई, अरावली पर्वतमालाके मध्यमें है। इसके निकटही रातकोट नामक एक ऊँची पहाड़ी चोटी है। "चाचा" और "मेरा" उसी चोटीपर एक दुर्ग बनाकर बड़ी सावधानीसे वहां रहने लगे। उदयपुरके चारों ओर जो पहाड़ियां चूड़ीकी तरह वर्तमान हैं, उनकी चोटी पर उस "रातकोट" दुर्गका टूटाफूटा चिह्न अबतक पाया जाता है।

रातकोटमें "चाचा" और "मेरा" एक प्रकार बिलकुल निश्चिन्त होकर रहने लगे। उन्होंने सोचा कि इस जगह शीघ्र कोई आक्रमण न कर सकेगा। दुष्टोंने यह नहीं सोचा कि राठौर और सीसोदीय वीरोंके क्रोधकी आग उनको एक-क्षणमें भस्म कर देगी। अस्तु, निश्चिन्त होकर वे और भी अधिक पापकर्म करने लगे। अन्तमें उन पापकर्मोंका फल उनको भोगना पड़ा। सूजा नामक एक चौहानकी अनूढ़ा कन्याको वे बलपूर्वक अपने दुर्गम दुर्गमें ले गये। इसपर सूजा इस अपमानका बदला लेनेके अभिप्रायसे [मलकूसैमें मिलकर रातकोटके सब गुप्त रास्ते खूब अच्छी तरह देख आया। इस प्रकार रास्ते आदिका सब प्रबन्ध करके वह क्रोधमें भरा हुआ अपने राज्यसे सब हाल कहनेके लिये आ रहा था, रास्तेमें [illegible] और राठौरनरेशकी सेनाएँ उसे मिलीं। उसको देखकर उसकी आशा पूरी हो गई। दोनों पक्षोंके मुंह छिपाते हुए [illegible] एक, [illegible]

[illegible] अपने अंगके [illegible] । [illegible]
जितने लोग पहले उपस्थित थे सबको "भाला" और "बीरा" [illegible]
लोग हुए । दिन तो सीसोदीय और राठौर वीरोंने [illegible]
देलवारा नामक स्थानमें बिताया और रातके समय बड़ी [illegible]
से उस दुर्गम दुर्गके ऊपर चढ़नेका बन्दोबस्त करने लगे । पहाड़के [illegible]
[illegible] लोहेकी कील गाड़े गये और उभरी हुई चट्टानोंपर पेड़ोंकी डालियों,* [illegible]
और लताओंकी छाया की गई । कीलोंका सहारा लेकर पेड़ोंकी डालियोंको
पकड़ते हुए ये लोग उस पहाड़ी दुर्गपर चढ़ने लगे । घोर अंधेरी रात थी। [illegible]
तारे उस अँधियारीको दूर करनेका जीजानसे यत्न करते थे, परन्तु पेड़ोंके [illegible]
उनकी मन्द रोशनी कदाचित् ही कहीं कहीं चढ़ाई करनेवालों पर पड़ती थी।
कुछ राठौर और सीसोदीय वीर धीरे धीरे ऊपर चढ़ रहे थे । चौहान वीर चूण्डा
सबके आगे रास्ता दिखाता हुआ चलता था। वह इसी प्रकार आगे बढ़ रहा था
इतनेमें छोटी छोटी दो चमकीली चीजें दूरसे उसे दिखाई दीं । विस्मित होकर
जब उसने विशेष दृष्टि गड़ाकर देखा तब उसे मालूम हुआ कि एक शेरनी बैठी
है और उसीके नेत्रोंसे यह रोशनी निकल रही है । उसी समय साथ आने
वाले राठौर-राजपुत्रका हाथ दबाकर डरके मारे वह कुछ पीछे हटा; परन्तु
राजकुमारने यह देखतेही तुरन्त अपनी तलवार उस बाघिनकी छातीमें घुसेड़
दी जिससे तुरन्तही वह परलोकको चली गई । ऐसी घटनाओंको राजपूत शुभ
लक्षण समझते हैं; अतएव इससे उनके हृदयमें दूना उत्साह हो गया । देखतेही
देखते सब डाबाकोटकी चोटी तक पहुँच गये। इनके साथ कोई तो दुर्गकी दीवार
पर चढ़ गया था, कोई चढ़ रहा था, इतनेमें [illegible] भाटोंके [illegible]
फिसला और वह दुर्गके अन्दर जाकर गिरा। उसके गिरनेकी आवाज [illegible] *, [illegible]
जोरसे [illegible] । [illegible] "भाला" [illegible]
[illegible] हुए "भाला" ने कहा—"[illegible]

* [illegible] राजपूतों [illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible] है; पानी बरस रहा है और मेघ गड़गड़ा रहे हैं; और कोई-कोई [illegible] प्रभु इस समय मेवाड़वालोंके हैं; उनको चोरसे कुछ चिन्ता नहीं है।" "चाचा" की बात समाप्त होने न होने दुर्गमें बड़ा कोलाहल सुनाई दिया। राठौर और शीशोदीय वीर दुर्गके अन्दर पहुँच गये। उनका शब्द सुनकर दुष्ट "चाचा" एकाएक चौंक उठा। पलंगसे झट उठ और तलवार खींचकर वह बाहर निकलाही था कि चन्दावत सरदारने उसी जगह उसके दो टुकड़े कर डाले। भाईको गिरते देख "मेरा" भागनेका उद्योग करने लगा; परन्तु राठौर-राजपूतने उसे पकड़कर उसका जीवन वहीं समाप्त कर दिया। इस प्रकार उन दोनों दुष्टोंका अन्त हुआ। विजयी शीशोदीय और राठौर वीर रामादुर्गकी सब चीजें लूटकर हर्षसे भरे हुए अपने अपने देशको लौटे।

सातवाँ अध्याय।

कुम्भका सिंहासनारोहण;—उसका मालवाके महमूदको पराजित और कैद करके अपने नगरमें लाना;—राज्यका गौरव और उन्नति;—अपनेही पुत्रके हाथसे गुप्त रीतिसे उसका मारा-जाना;—पितृहन्ताको पदच्युत करके रायमलका चित्तौरके सिंहासनका अधिकार प्राप्त करना;—देहलीकी सेनाका मेवाड़पर आक्रमण करना;—रायमलकी जीत;—पारिवारिक झगड़ा;—रायमलकी मृत्यु।

संवत् १४७५ (सन् १४१८) में राणा कुम्भ अपने पिताके सिंहासनके अधिकारी हुए। आपके समयमें मेवाड़राज्यका गौरव बढ़ा और उन्नति हुई। अनेक कठोर विघ्नों और विपत्तियोंके पड़ने पर भी उन्होंने अपना राज्य अच्छे ढङ्गसे सँभाला और इस तरहके काम किये जिनसे उनके राजगुणका स्पष्ट परिचय मिलता है। परन्तु हम नहीं कह सकते कि मेवाड़नरेशको † सहायताके बिना वे कुछ

† रणछोर भट्टने अपने बनाये "राजरत्न" नामक ग्रन्थमें लिखा है कि [illegible] हम्मीरराव राणा कुम्भके एक सामन्त थे और मावा तथा दिहाना [illegible] जीतकर उन्होंने मेवाड़में मिला दिये थे।

कर सकते या नहीं, क्योंकि छोटी छोटी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मिलता [illegible]
उनके हटानेका यदि राठौरश्रेष्ठ यत्न न करते तो कौन कह सकता है कि मेवा[illegible]
की क्या दशा होती? ख्यातोंमें राठौड़श्रेष्ठकी सहायताकी बात लिखी [illegible]
लिखी हुई है। परन्तु एक दूसरे राज्यके अधिकारी होकर उन्होंने मेवाड़के लि[illegible]
इतना परिश्रम और कष्ट क्यों किया? इसके कई कारण हैं; उनमें सबसे [illegible]
मुख्य यह है कि राणा कुम्भने उनकी शरणमें आकर उनसे सहायता मांगी [illegible]
यह प्रार्थना यदि वे स्वीकार न करते तो उनको कलङ्क लगता। दूसरा कारण [illegible]
कि राणा कुम्भ उनके भतीजे थे। इसलिये कुछ तो कर्त्तव्य जानकर और कुछ
स्नेहसे उनको कुम्भके लिये इतना श्रम और कष्ट करना पड़ा।

कई शताब्दियोंतक जैसे अच्छे और तेजस्वी राजाओंसे मेवाड़राज्य सुशोभित
था वैसे गुणी राजाओंसे संसारका दूसरा कोई राज्य इतने समयतक सुशोभित था
या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। राणा कुम्भ जिस समय मेवाड़के सिंहासनके
अधिकारी थे उस समय सीसोदीय कुलकी विशेष उन्नतिका परिचय मिलता है।
मुसलमानोंके आक्रमणसे जो स्थान एकदम विध्वस्त हो गये थे उनकी अवस्था अब
बहुत कुछ सुधर और सम्हल गई थी। जिन मुसलमानोंने मेवाड़की स्वाधीनता
छीनी थी उनको मरे प्रायः सौ वर्ष बीत चुके थे और इस एक शताब्दीके बीचमें
मेवाड़में अनेक परिवर्त्तन हुए। वीरवर समरसिंहके साथ जो राजपूत समरभूमिमें
सदाके लिये सो गये थे उनके बचे खुचे भस्मसे इस समय तक अनगिनत सीसो-
दीय वीर उत्पन्न हो गये थे। अब मेवाड़में किसी बातकी कमी नहीं थी। बल,
वीरता, गौरव, प्रतिष्ठा, सब कुछ वर्त्तमान था। परन्तु इस अवस्थामें भी चुपचाप
न रहकर राजनीतिज्ञ कुम्भने अपनी अद्भुत दूरदर्शितासे जान लिया कि [illegible]
भविष्यमें क्या होनेवाला है। उन्होंने देखा कि सुदूर काकेशस पर्वतमालाकी ऊँची
ऊँची चोटियों और उसके नीचे बहनेवाली आक्सस नदी के किनारेसे बड़े बड़े
बादल उठ रहे हैं और धीरे धीरे भारतकी ओर बढ़ते हैं। राणा कुम्भने अच्छी
समझ लिया कि उन बादलोंमें जो प्रचण्ड बिजली छिपी हुई है वह थोड़े दिनों
के बाद और भी प्रबल होकर उनके पौत्र सांगाके सिरपर गिरेगी। अतएव वे अभी
से उपाय करने लगे कि यह बिजली इधर चोट न करने पावे। उन उपायोंके
करनेमें उन्होंने अनेक कठोर काम किये, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] और कार्यकुशलता, [illegible] सुन्दर [illegible], और [illegible] अधिक उनके अच्छे अच्छे गुणोंका परिचय मिलता है। एक समय राजा कुम्भके [illegible] किनारे तक अपनी विजयपताका उड़ाई थी। इस [illegible] हिन्दुओंकी प्रजाहितैषिणी शासनविधिके मुसलमानोंके अत्याचारसे भरे राज्यशासनका [illegible] करती हैं।

जिस दिन शहाबुद्दीनने भारतकी स्वाधीनता छीनी और समरकेसरी समरसिंह ने दृषद्वतीके किनारे देशोद्धार करनेके उद्योगमें अपने प्राण खोये, उस दिनको बीते आज, अर्थात् जबका हाल हम लिख रहे हैं, २२६ वर्ष हो गये हैं। इन दो शताब्दियोंके बीच दो बड़े मुसलमान राजवंशोंमें एक सौ और सब मिलकर २४ मुख्य सरदार बड़े बड़े झगड़े और पापकर्म करके परलोकको सिधारे। अब यदि मेवाड़के साथ हम इनका मुकाबिला करते हैं तो दोनोंमें बहुत बड़ी पृथक्ता दिखाई देती है। इतने लम्बे समयमें सब मिलकर केवल ११ राजाओंने मेवाड़राज्यका शासन किया और इनमेंसे कई राजाओंने मातृभूमि अथवा पवित्र तीर्थोंकी रक्षामें लड़कर अपने प्राण विसर्जन किये। इस वर्णनसे यह बात स्पष्ट समझमें आ जाती है कि जो राजे प्रजाके हितके कामोंमें लगे रहकर राज्यपालन करते हैं वे अधिक दिनोंतक राजसुख भोगते हैं।

[illegible] शासनके अन्तिम समयमें विजयपुर, [illegible], मालवा, गुजरात, जौनपुर और काल्पी आदि छोटे छोटे कर देनेवाले राज्योंके अधिकारी, [illegible] निर्बलता देखकर अधीनता छोड़, क्रमशः स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने लगे। जिस समय राणा कुम्भने चित्तौड़का राजसिंहासन प्राप्त किया उस समय मालवा और गुजरातके अधिकारी खूब बलवान् होकर अपने राज्योंका विस्तार बढ़ानेके लिये उद्योग कर रहे थे। इस समय मेवाड़की [illegible] हाल सुनकर उनका लालच और भी बढ़ गया। अतएव संवत् १४९६ (सन् १४४०) में इकट्ठे हो और एक बहुत बड़ी सेना लेकर दोनों मेवाड़की ओर चले। राणा कुम्भने भी इनके आनेका हाल सुना; सुनतेही बहुत [illegible] लेकर इनोंसे लड़ाईकी तैयारी की। एक लाख घोड़े तथा पैदल और १४०० [illegible] लेकर उनोंने शत्रुओंका सामना किया। मेवाड़ और [illegible] की [illegible]

यह लड़ाई हुई । इस लड़ाईमें मालवाका अधिकारी महमूद खिलजी हारा। राणा कुम्भ कैद करके उसे चित्तौड़में ले गये।

अबुलफज़लने अपने इतिहासमें राणा कुम्भकी इस जीतका हाल बहुत अच्छे ढङ्गसे लिखा है; मुसलमान होकर भी हिन्दू राजाकी उदारता और साहसपर मोहित होकर अपने इतिहासमें उसने इनकी कीर्ति गाई है । इस विषयमें अबुलफज़लने जो कुछ लिखा है उसका आशय यह है कि "उदारचरित राणा कुम्भने बिना कुछ लिये अपने शत्रु महमूदको छोड़ दिया, बल्कि बहुत तरहकी वस्तुएँ भेंटमें देकर उसे सम्मानपूर्वक उसके राज्यमें पहुँचवा दिया।" सच है, हिन्दू ऐसेही उदार होते हैं। विनीत शत्रुको दया करके छोड़ देना हिन्दूवीरोंका प्रधान धर्म है;—इस धर्मका पालन करनेमें वे कभी नहीं चूकते । महमूदके छुटकारेके विषयमें ग्रन्थोंमें दूसरी बात लिखी है । भाटोंने लिखा है कि राणा कुम्भने महमूदको छः महीनेतक चित्तौड़में कैद रखनेके बाद छोड़ा और जीतके प्रमाणके लिये दूसरी वस्तुओंके साथ उसका ताज (मुकुट) भी रख लिया। बाबरने अपनी जीवनीमें लिखा है कि यह ताज राणा सांगाके पुत्रसे हमको भेंटमें मिला था । अतएव यह भी राणा कुम्भके लिये एक गौरवकी बात है। परन्तु कुम्भकी जीतका सबसे बड़ा चिह्न एक विजयस्तम्भ है जो बहुत दिनोंतक वर्तमान रहेगा । इस विजयस्तम्भमें उक्त लड़ाईकी सब बातें लिखी हैं। एक स्थानमें लिखा है, "समुद्रकी तरह बड़ी भारी सेना लेकर पृथ्वीको कँपाते हुए गुजरात तथा मालवाके अधिकारी मेदपाट * पर आक्रमण करनेके लिये आये।" उक्त लड़ाईके ग्यारह वर्ष बाद राणा कुम्भने यह विजयस्तम्भ बनवाना आरम्भ किया और दस वर्षमें वह बनकर तैयार हुआ । यह स्तम्भ इतना बड़ा और ऐसा है कि इसे देखकर यही कहते बनता है कि राणा कुम्भकी कार्यदक्षतासे ही यह इतने कम समयमें बन सका। ईश्वरसे प्रार्थना है कि यह सदा सर्वदा इसी तरह अटलभावसे खड़ा रहकर मेवाड़के राणाओंका गौरव प्रकट करता रहे।

राणा कुम्भकी उदारता देखकर मालवाके अधिकारी महमूदने उनसे मित्रता करली । ग्रन्थोंमें लिखा है कि झुनझुनू नामक स्थानमें एकबार देवड़ोंसे [illegible]

* मेदपाट मेवाड़का प्राचीन नाम है।

के साथ राणा कुम्भका युद्ध हुआ था; इस लड़ाईके समय महमूदने सेनाके अधि-ईसकी सहायता की थी। इस अवसर पर राणा कुम्भकी जीत हुई थी।" इस समय देहलीके बादशाहकी क्षमता इतनी घट गई थी कि पूर्व गौरवको पुनः प्राप्त करनेके लिये मुल्ला हर दिन मसजिदोंमें जाकर तैमूरके नाम 'खुतबः' पढ़ते थे। अकेले मालवाके महमूदने देहलीके अन्तिम गोरी सुलतानको पराजित किया था।

विदेशियोंके आक्रमणसे मेवाड़की रक्षा करनेके लिये जो ८४ दुर्ग बने थे उनमेंसे ३२ दुर्ग राणा कुम्भने बनवाये थे। इन सभोंमें कुम्भमेरु (कमलमीर) दुर्ग विशेष प्रसिद्ध है। यह दुर्ग ऐसे स्थानमें है और इसके चारों ओर इतनी ऊँची ऊँची अट्टालिकाएँ हैं कि चित्तौड़को छोड़ इसे मेवाड़के दूसरे सब दुर्गोंसे बढ़कर कह सकते हैं। कमलमीरकी उक्त अट्टालिकाएँ जिस जगह बनी हुई हैं वहां प्राचीन समयमें एक दुर्ग था। बहुत दिनोंतक पहाड़ी भील उस दुर्गके अधिकारी थे। बहुतोंका कथन है कि महाराज चन्द्रगुप्तके वंशमें सम्प्रीत नामक जो जैनी राजा खृष्टीय दूसरी शताब्दीमें हुआ था यह प्राचीन दुर्ग उसीका बनवाया हुआ है। इस दुर्गके स्थान स्थानमें बहुतसे जैनमन्दिर हैं; उनकी बनावट देखकर विश्वास होता है कि लोगोंका ऊपर लिखा कथन सच है।" कमलमीर दुर्गका एक प्रधान द्वार "हनुमान्-द्वार" के नामसे प्रसिद्ध है। वहां 'वीरवर हनुमान्की बड़ी मूर्त्ति रक्षककी रीतिपर संस्थापित है। नगरकोट जीतनेके बाद राणा कुम्भ वहांसे बहुत से सुन्दर फाटकोंके साथ यह कपिमूर्त्ति अपने राज्यमें लाये थे। आबू पर्वतकी चोटीपर प्राचीन प्रमारोंका एक बड़ा दुर्ग था; कुम्भने इसमें एक महल बनवाया और इसी महलमें वे प्रायः रहा करते। इस महलके अन्नागार और रत्नशाला अबतक कुम्भके नामसे प्रसिद्ध हैं। राणा कुम्भ अपनी प्रजाओंको बहुत प्रिय थे, इसका प्रमाण मेवाड़वासियोंके अनेक कार्योंसे पाया जाता है। इस (आबू पर्वत वाले) दुर्गमें कई मन्दिर हैं; उनमेंसे एकमें कुम्भ तथा उनके पिताकी पीतलकी प्रतिमूर्त्तियां स्थापित हैं। मेवाड़के लोग अब भी वहां जाकर इन दोनों मूर्त्तियोंको देवताकी तरह पूजते हैं। जिस दिन राणा कुम्भका उस दुर्गमें परलोक हुआ, उस दिनको बीते आज कई शताब्दियां हो गईं; उनके वे वंशधर जिन्होंने नाम पाये अब, इस संसारमें नहीं हैं; तथापि इन कीर्त्तियोंको देखकर मेवाड़के प्राचीन गौरवका वृत्तान्त स्वयं मनमें उदित हो जाता है।" मेवाड़के पश्चिम और 'सक

आबू पर्वतके बीचके पहाड़ी रास्तोंको हद करके राणा कुम्भने वर्त्तमान सिरोहीके पास वासन्ती नामक एक दुर्ग बनवाया। इसके सिवा, अरावलीमें रहनेवाले पश्चिम मेरोंके आक्रमणसे देवगढ़ तथा शेरोनगढ़की रक्षा करनेके लिये माचीन नामक एक और दुर्ग निर्माण कराया; और आरोल तथा पानोड़के भूमिया भीलोंको वशमें करनेके लिये उन्होंने आहोर आदि कई टूटेफूटे प्राचीन दुर्गों की मरम्मत भी कराई और मेवाड़ तथा मारवाड़की सीमा भी ठीक की।

इन कीर्त्तियोंके अतिरिक्त राणा कुम्भ धर्मसम्बन्धिनी भी अनेक कीर्त्तियां छोड़ गये हैं। उनमें दोकी विशेष प्रसिद्धि है। प्रथम "कुम्भश्याम"। कुम्भश्याम आबू पर्वतके ऊपर है। यदि यह इमारत दूसरी जगह होती तो बहुतही शोभाप्रद समझी जाती। इसके चारों ओर अनेक सुन्दर सुन्दर पदार्थ हैं, इससे एकदम इसके सौन्दर्य्यका अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता। दूसरी अट्टालिका बहुत बड़ी है; उसके बनवानेमें दस करोड़से भी अधिक रुपये खर्च हुए थे। इसके बननेमें राणाने अपने खजानेसे ८ लाख रुपये देकर सहायता की थी। मेवाड़के पश्चिम भाग में मादड़ी नामक पहाड़ी पथमें यह विशाल इमारत बनी हुई है। राणाजीने इस-को ऋषभदेव * के नाम समर्पण कर दिया था। दुर्गम और चक्करदार पहाड़ियों के बीचमें होनेके कारण यह अट्टालिका मुसलमानोंके हाथोंसे नाश होनेसे बच गई; परन्तु दुःखकी बात है कि इस समय इसकी कोई खबर लेनेवाला नहीं है। ऋषभदेवका जो पवित्र मन्दिर एक समय मेवाड़का एक प्रधान तीर्थस्थान माना जाता था, प्रतिदिन जहां सहस्रों नर नारियां दर्शनोंको आती थीं, आज वह बिल्कुल सुनसान और घोर जंगलके रूपमें दिखाई देता है; उस अट्टालिकाकी पवित्र कोठड़ियोंमें इस समय भयानक जङ्गली जन्तु रहते हैं जिनके कारण वह

* राणाका एक जैनी मन्त्री था; वह परवार कुलका था। उसीने सन् १४३८ ई० में ऋषभदेवका मन्दिर प्रतिष्ठित किया था। सर्वसाधारणके व्ययसे यह मन्दिर बना। यह तिमंजिला है। बहुतसे पत्थरके खम्भों पर यह स्थापित है। प्रत्येक खम्भेकी ऊंचाई ४० फीटसे कुछ अधिक है। इस मन्दिरकी बनावट बड़ीही विचित्र है। इसके भीतरी भागमें अनेक प्रकारकी मनोहर चित्रकारियां की हुई हैं। प्रसिद्ध जैन संन्यासियोंकी प्रतिमूर्त्तियां इसके निचले भागमें स्थापित हैं।

दुर्भेद्य खास और भी दुर्गम हो रहा है। राणा कुम्भ जैसे वीर, शिल्पप्रेमी और न्या-यशील थे, वैसेही वे एक सुकवि भी थे। कविता-रचनाके लिये राजस्थानके दूसरे राजकवियोंकी अपेक्षा उन्होंने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की थी। दूसरोंकी तरह अपनी बड़ाई या सुन्दरियोंके सौन्दर्य्यका वर्णन करनेमें उन्होंने अपनी प्रतिभा नहीं बिगाड़ी। प्रसिद्ध "गीतगोविन्द" पर उन्होंने एक बहुतही सुन्दर स्वतन्त्र टीका लिखी थी।

राणा कुम्भने मारवाड़के श्रेष्ठ सामन्त मेरतानिवासी राठौर सरदारकी कन्या मीराबाईके † साथ विवाह किया था। मीराबाई जैसी अत्यन्त सुन्दरी थी, वैसीही धर्मानुरागिनी भी थी। इन गुणोंमें उस समय इसकी बराबरी करनेवाली दूसरी कोई राजकुमारी नहीं थी। मीराबाई बड़ी विदुषी थी; कविता रचनेकी उसमें अपूर्व शक्ति थी ❋। उसने भगवान् श्रीकृष्णके विषयके अनेक भावमय पद्य रचे हैं। विष्णुविषयक होनेके कारण वैष्णवोंमें उसकी कविताका बड़ा आदर है। अब तक राजस्थानके अनेक घरोंमें काव्यप्रिया मीराबाईके पवित्र भजन गाये जाते हैं; अबतक अनेक वैष्णव उसके सुन्दर सुन्दर पदोंको गाते गाते प्रेममें पुलकित हो उसकी रचनाशक्तिकी बारम्बार प्रशंसा करने लगते हैं। राणा कुम्भ भी कवि थे; परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि मीराबाईने उनसे यह अपूर्व प्रतिभा प्राप्त की थी या राणाजीने स्वयं उससे कविता करना सीखा था। जो हो, धर्मनिष्ठा विदुषी मीराबाईका जीवनचरित एक मनोहर उपन्यासके समान है। यमुना-किनारेसे लेकर सुदूर द्वारकापुरी तकके मन्दिर मीराबाई अपनी आंखोंसे देख आई

† मीराबाईका जन्म संवत् १४७५में हुआ था। इसके पिताका नाम जयमल था।

❋ मीराबाईका एक भजन यहां उद्धृत करते हैं,—(राग सोरठ)

"छाँड़ो लँगर मोरी बँहियां गहोना।
मैं तो नार पराये घरकी, मीरे भरोसे गोपाल रहोना।
जो तुम मोरी बँहियां गहत हो, नयन मिलाय मेरे प्राण हरोना॥
वृन्दावनकी कुञ्ज गलिनमें, रीति छोड़ि अनरीति करोना।
मीराके प्रभु गिरिधर नागर, चरणकमल चित टारे टरोना॥
छाँड़ो लँगर मोरी बँहियां गहोना।"

थी। उनके इस कुछ ऐसे व्यवहारके कारण उनके चरित्रके सम्बन्धमें अनेक कलङ्क की बातें सुन पड़ती हैं, परन्तु वह सब अन्याय है और वे बातें उनके पवित्र चरित्रके एकदम अयोग्य हैं।

राणा कुम्भ जैसे वीर थे वैसे प्रेमी भी थे। आदिरस और वीररसने मिलकर उनके हृदयको बड़ा सुन्दर बना दिया था। झालावाड़ राज्यके अधिकारी सरदार की कन्यासे राठौर राजकुमारका विवाह स्थिर हुआ था; परन्तु विवाह होनेसे पहलेही राणा कुम्भ उस राजपूत राजकुमारीको हर लाये। अबतक राठौरों और सीसोदियोंमें जो मित्रता थी वह कुम्भके इस व्यवहारसे जाती रही; फिर दोनों कुलोंका प्राचीन वैर जाग उठा। प्रेमी राठौरने अपनी प्यारीसे मिलनेके लिये अनेक उपाय किये; पर कुछ लाभ न हुआ। तौभी उस सुन्दरीके पानेसे वह एकदम निराश नहीं हो गया। रात दिन मन्दोरके राजमहलकी एक सुनसान बारहदरीमें बैठा वह उसी सुन्दरीके सौन्दर्यका ध्यान किया करता। पानी बरसकर बादलोंके हट जाने पर कमलमीरका ऊपरी भाग स्पष्ट दिखाई देता; उस समय राजकुमार एकान्त स्थानमें बैठा बैठा अपनी प्रियतमाके भवनको जी भरके देखता। कितनी चिन्ता—कितनी भावना उसके हृदयमें उत्पन्न होतीं। कभी सुख, कभी दुःख, कभी आशा, कभी निराशाका उसके हृदय पर अधिकार होता। कभी कभी तो वह एकदम अधीर हो जाता; तौभी मोहमयी चिन्ता न टूटती। उस बारहदरीको छोड़कर वह दूसरी जगह न जाना चाहता। क्या दिन, क्या रात, सब समय कमलमीरके राजमहलकी ओर देखा करता। भादोंकी काली काली रातों की घोर अँधियारीमें सारे संसारके अदृश्य हो जाने पर भी वह उसी एकान्त बारहदरीमें बैठे रहते। कमलमीर दुर्गकी उज्ज्वल रोशनी उस अँधियारीको भेदकर सितारोंकी तरह दूरसे दिखाई देती। राजकुमार बैठा बैठा उसीको देखा करता। बहुतोंका अनुमान है कि कमलमीर दुर्गके राजमहलमें जो रोशनी जलती वह झालावाड़-राजकुमारीके लिये प्रेमका परिचय देनेवाली थी; राजकुमारी राजपुत्र को चाहती थी; बड़े कुलमें विवाह होने पर भी बचपनके निर्मल प्रेमकी बातें वह भूल नहीं सकी थी; उसके पिताने धनके लालचसे उसका विवाह उसके प्रेमीसे एक बड़े मनुष्यके साथ कर दिया था; कन्याके सुख दुःख पर ध्यान न दिया। वह विवाह

राजकुमारीको सदा दुःखित किये रहती और वह अपने भाग्यको धिक्कारा करती। इसी प्रकार कई वर्ष बीत गये। विरही राठौर-राजकुमार लाख उपाय करने पर भी अपनी चित्तविनोदिनीको न पा सका। एक दिन रातके समय कमलमीर के पश्चिम ओरके घने जंगलसे होकर वह दुर्गतक पहुँचा था, पर सब भाटकवियों की लिखावटसे इस विषयमें यही जान पड़ता है कि वह झाल-बन (एक प्रकारके काँटीले वृक्षोंका जंगल) तो पार कर गया, पर झालनी (राजकुमारी) तक न पहुंच सका।

५० वर्ष तक बड़े अच्छे ढंगसे राज्यशासन करके राणा कुम्भ वृद्धावस्थाको पहुँचे। उनके सजाति और स्वदेशके शत्रु उनकी वीरताके आगे मन्त्रमुग्ध सांपकी तरह विनीतभावसे बैठे थे। अनेक दुर्ग और मन्दिरोंसे अपने राज्यको दृढ़ और अलङ्कृत करके उन्होंने अपनी मातृभूमिका गौरव और अपना यश बढ़ाया। ऐसे समयमें उनके फलवान् जीवन-वृक्षकी जड़में एक दुष्ट नरराक्षसने कठोर आघात किया! जो वर्ष समय मेवाड़के लिये बड़े आनन्द और उत्सवका होता, वह उस पापी पिशाचके कारण कालरूपी अन्धकारसे ढँक गया! उस वर्षके एक बुरे दिन जो भयानक बात हो गई उससे आर्यजातिके इतिहासका एक बड़ा अध्याय कलङ्क-कालिमासे कलुषित हो गया। जो परम गुणवान् राणा कुम्भ सुख और शान्तिके साथ धीरे धीरे वृद्धावस्थाके पथ पर चले जाते थे, उनका पवित्र जीवन एक पिशाच घातककी छुरीके आघातसे असमयमें ही इस संसारसे अलग हो गया!—वह नर-पिशाच घातक उनका पुत्र था!

इस प्रकार संवत् १५२५ (सन् १४६८) में यह घटना हुई। जिस दुष्टने अपने हाथोंसे अपने जन्मदाता पिताका रक्त बहाया उस पापीका नाम लेना उचित नहीं; उसका नाम उच्चारण करनेसे भी पाप लगता है।—उसका—उस दुष्ट पितृहन्ताका नाम—ऊदा था! राजस्थानके चारणोंने इस पापीका नाम लेनेके बदले इसके लिये "हत्यारा" "नरहन्ता" आदि अपमानसूचक शब्दोंका व्यवहार किया है। दुष्टने लोभमें आकर जिस राज्य पर अधिकार पानेके लिये अपने पिता को मारा, उसका भोग वह बहुत थोड़े दिनों तक कर सका। यह थोड़ा समय भी सुखसे नहीं बीता। उसके आत्मीय, स्वजन, भाई, बन्धु सबने उसे छोड़ दिया। इस

रित्वा और दूषित अवस्थामें अपनेको उस पापसे पाये हुए सिंहासन पर नि-श्चल रीतिसे रखनेका कोई दूसरा उपाय न देखकर वह छोटे बड़े क्षत्रियोंसे झूठी मित्रता जताने लगा। इस प्रकारकी बनावटी मैत्री प्रकट करनेके लिये पापी ऊदाने देवराके अधीन राजाको आबू पर्वतका स्वतन्त्र अधिकारी बना दिया और जोधपुरके ¶ राजाको सांभर, अजमेर और आसपासके और कई स्थान दिये। इतने पर भी दुष्टको तनिक शान्ति नहीं मिली। जिस मतलबसे इतने धनके बदलेमें उसने मित्रता खरीदी, वह मतलब सिद्ध नहीं हुआ। वह चाहता था कि इनको वशमें करके और भी दुष्टताके काम करे और उनसे सहायता ले। परंन्तु इनसे अपने मनका हाल कहनेका साहस उसे नहीं हुआ; यदि वह कुछ कहता तो कदाचित् वे उसकी बात मानते भी नहीं। सो उसके मनकी अभिलाषा पूरी नहीं हुई, वरन् उसे बहुत दुःख हुआ। अपने पत्थर जैसे हृदयको शान्त करनेके लिये पापी ऊदा राज्यमें अनेक प्रकारके अत्याचार करने लगा। उसके कठोर अत्याचारों और दुर्व्यवहारोंसे राज्यकी शोभा क्रमशः नष्ट होने लगी। मेवाड़के जिस गौरव और मानके बढ़ानेमें राणा कुम्भ जैसे सुयोग्य अधिकारीको बहुत वर्षों तक निरन्तर उद्योग करना पड़ा था, उस गौरव और मानको कुलाङ्गार ऊदाने केवल ५ वर्षमें चौपट कर डाला! पर राज्य पाकर भी वह पितृघाती दुष्ट चिन्तासे अपना छुटकारा न कर सका। विपुल धन देकर जिन क्षत्रियोंके साथ उसने बनावटी मित्रता स्थापित की थी वे उससे घृणा करने लगे। तब अभागेने स्वार्थके लिये दूसरा उपाय न पाकर देहलीके मुसलमान बादशाहकी शरण ली और अपनी कन्या तक देनेकी प्रतिज्ञा करके उससे सहायता मांगी! "परन्तु ईश्वरने उसे इस घृणित दुराचरणसे रोककर वीरवर बप्पारावलके वंशको कलङ्कित होनेसे बचा लिया और उस पापीको उसके पापका उचित फल चखाया।" ज्योंही वह दुष्ट बादशाहसे बिदा होकर दीवानखानेके बाहर निकल रहा था त्योंही उस ह-त्यारेके सिर पर बिजली गिरी और वह वहीं गिरकर शान्त हो गया। कठोर पापका कठोर प्रायश्चित्त हुआ;—पापसे भरे जीवननाट्यका अन्तिम परदा सदा सर्वदाके लिये गिर गया। एक भाटने उसकी सहायता की थी, कदाचित् इसीसे

¶ इस घटनासे दस वर्ष पहले संवत् १५१५में जोधरावने जोधपुर स्थापित किया।

अपनी इस भाईकी दुष्टता छिपानेके लिये भट्टकवियोंने यह वृत्तान्त बहुत संक्षेपमें लिखा है।

राजस्थानवाले वहाँके ब्राह्मणों, यतियों, चारणों वा भाटोंको "मँगन्ता" कहते हैं। इन मँगन्तोंमें प्रायः सदा झगड़ा लगा रहता है। एक दूसरे पर अपनी बड़ाई और प्रतिष्ठा जमानेके लिये उत्सुक रहा करते हैं। परन्तु इस्मीरके समयसे इनमेंसे केवल चारणोंका अधिक मान है। एक ब्राह्मण ज्योतिषीने गणना करके कहा था कि किसी चारणके हाथसे राणा कुम्भ मारे जायँगे। इससे पहले राणाजी किसी कारणसे चारणोंसे बहुत रुष्ट हो गये थे; इस समय उन्हींमेंसे एकके हाथ अपने मारे जानेका हाल सुनकर उन्होंने सब चारणोंकी भूमिसम्पत्ति छीन ली और उनको अपने राज्यके बाहर निकलवा दिया। चारणोंको ऐसे कठोर दण्डसे दुःखित करके उन्होंने अवश्यही अच्छा काम नहीं किया; क्योंकि ब्राह्मणके साथ ज़रा भी कठोर व्यवहार करनेका अब भी कोई साहस नहीं कर सकता। परन्तु चारण इस दण्डसे बहुत दिन दुःखित न रहे; युवराज रायमलने शीघ्र उनका छुटकारा कर दिया। युवराजने अपने पिता राणा कुम्भसे कौतुकवश एक प्रश्न * किया था; इसीसे क्रुद्ध होकर राणाजीने उनको राज्यसे निकालकर ईडरप्रदेशमें भेज दिया था।

एक चारण उनका बड़ा मित्र था। उसने ऐसी चतुराई की कि राणाजी प्रसन्न हुए और चारणोंकी सब भूमिसम्पत्ति उन्होंने उनको लौटा दी। परन्तु जिस कुटिल ब्राह्मणने उनकी मृत्युकी गणना की थी यदि वह मारा जाता तो उसका कहा हुआ भविष्यद्वाक्य अवश्य निष्फल होता; पर दुर्भाग्यसे वह भविष्य वचन शीघ्र फलवान् होगया †।

* एक विचित्र कारणसे राणाजीने युवराज रायमलको देशनिकालेका हुक्म दिया था। जिस दिन राणा कुम्भ झुंझनू नामक स्थानमें मुसलमानों पर विजयी हुए थे उस दिनसे कहीं बैठनेसे पहले वे एक मन्त्र पढ़कर अपनी तलवार तीन बार सिर पर घुमाते थे। रायमलने इसका कारण पूछा; इसपर राणाजीने क्रुद्ध होकर उनको राज्यके बाहर कर दिया।

† सन् १८२० ई० की वर्षाऋतुमें टाड साहब उदयपुरमें थे। उस समय राणाजी बहुत बीमार हो गये। हर साल वर्षाऋतुमें यह रोग उनपर आक्रमण

अपनी वीरता और क्षमतासे रायमलने संवत् १५३० (सन् १४७४) में राणा कुम्भके सिंहासन पर आरोहण किया। सिंहासन पर अधिकार करनेके पहले उनको अपने पितृहन्ता भाई ऊदाके विरुद्ध तलवार पकड़नी पड़ी थी। उस युद्ध में पराजित होकर दुष्ट ऊदा देहलीके बादशाहके पास गया और उनको अपनी कन्या देनेकी प्रतिज्ञा उसने की। परन्तु ईश्वरने उसकी प्रतिज्ञा पूरी होने नहीं दी। उसके सिहेशमल तथा सूर्यमल नामक दो पुत्र थे। उसकी मृत्युके बाद उसके इन दोनों पुत्रोंको लेकर सेनाके सहित देहलीके बादशाहने मेवाड़राज्य पर आक्रमण किया। उस समय वर्त्तमान नाथद्वारा सियाड़ नामसे प्रसिद्ध था। मुसलमान इसी स्थानमें पड़ाव डालकर युद्धकी बाट जोहने लगे। मेवाड़के सर-

---

करता। उनकी बीमारीका हाल सुनकर टाडसाहब उनको देखनेके लिये राज महलमें गये। रोगका ठीक कारण और रोगीकी उस समयकी अवस्था जानकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। एक कुटिल ब्राह्मण उनके यहां चिकित्सक और ज्योतिषी दोनोंका काम करता था। वह राणाजीकी बड़ी बहिनकी सम्पत्तिका प्रबन्ध करनेके लिये भी नियुक्त था। उस कपटी ब्राह्मणने राणाजीकी जन्मपत्रिकामें लिखा था कि सन् १८२० ई०में उनको एक महाभयङ्कर रोग होगा, इस रोगसे उनका बचना कठिन है। आश्चर्यकी बात है कि यही ब्राह्मण राणाजीकी चिकित्सा करता था। अतएव उस कपटीने अपना भविष्यवाक्य सफल करनेके लिये उचित दवाके बदले समधातु मिली हुई दवा दे दी। यदि राणाजी इसे खा लेते तो यह दवा विषका काम करती। टाडसाहबने इसकी परीक्षा करके राणाजीसे कहा— "महाराज, आप इस कपटीके धोखेमें पड़कर बीमार हो रहे हैं। यह आपको उचित औषधिके बदले विषका सेवन करा रहा है; इससे आपकी जो कुछ हानि हो सकती है वह आप स्वयं समझ सकते हैं; अतएव मेरा निवेदन है कि इसकी दवा छोड़कर आप अच्छी दवाका व्यवहार करें।"—टाड साहबकी बातें राणाजी के हृदयमें पैठ गईं; उनके ज्ञाननेत्र खुल गये; वे समझ गये कि यह वैद्य अपनी कही हुई भविष्यवाणीकी सफलताके लिये यह जघन्य कार्य कर रहा है। फिर उन्होंने दूसरे चिकित्सककी दवा करनी आरम्भ की जिससे उनको लाभ हुआ और वे चंगे हो गये। वह ब्राह्मण अपने पदसे अलग किया गया।

हारों और सामन्तोंने राणा रायमलका ही साथ दिया, क्योंकि वे जानते थे कि वेही चित्तौड़के सच्चे अधिकारी हैं । इसके दल आकर वे राणा रायमलकी सेनाओं के साथ एकत्रित होने लगी । आबू और गिर्नारके राजे भी आये । ११ सहस्र पैदलों और ५८ सहस्र सवारोंके साथ राणा रायमलने घासा नामक स्थानमें शत्रुओंका सामना किया । घोर लड़ाई हुई । जदाके दोनों पुत्र बड़ी वीरतासे लड़ते थे । परन्तु राणाजीके सामने उनकी एक न चली । अन्तमें पराजित होकर उन्होंने अधीनता स्वीकार की । राणा रायमलने उनका सब अपराध क्षमा करके आदर-पूर्वक उनको ग्रहण किया* । देहलीका बादशाह उस समय ऐसा पराजित हुआ कि फिर अपने जीवन भर वह कभी मेवाड़की सीमाके भीतर पांव न रख सका ।

राणा रायमलकी दो कन्याएँ और तीन धुरन्धर पुत्र थे । गिर्नारके अधिपति यदुवंशी सूरजी और सिरोहीके देवरा जयमलके साथ उन्होंने अपनी दोनों कन्याओंका विवाह कर दिया था । जयमलको उन्होंने जहेजमें आबू पर्वत भी दे दिया था । अपनी और पूर्वजोंके मान सम्मानकी उन्होंने रक्षा की थी । मालवाके अधिकारी गयासुद्दीनके साथ उनका बड़ा विरोध था । दोनों अनगिनत बार एक दूसरे के विरुद्ध युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हुए थे । उन सभी युद्धोंमें गयासुद्दीन हारा था और राणा रायमलकी जीत हुई थी । उनकी जीतके प्रधान कारण उनके दोनों भतीजे सिंहेश्वमल तथा सूर्यमल थे । अन्तमें विजय प्राप्त करनेकी कोई सम्भावना न देखकर गयासुद्दीनने राणाजीसे सन्धि करनेकी प्रार्थना की । राणा रायमलने उसकी प्रार्थना स्वीकार की और सन्धि हो गई । इसके बादसे राणा रायमल एक प्रकार निष्कण्टक होकर राज्यका शासन करने लगे । क्योंकि उस समय उनकी बराबरी करनेवाला भारतवर्षमें दूसरा कोई राजा नहीं था । इन घटनाओंके बाद देहली पर लोदियोंका अधिकार हुआ । मेवाड़के उत्तर ओरके स्थानोंके कारण, उनसे और राणा रायमलसे कई बार लड़ाई हुई ।

पहले ही लिखा जा चुका है कि राणा रायमलके तीन पराक्रमी पुत्र थे । उनके नाम क्रमानुसार सांगा, पृथ्वीराज और जयमल थे । सांगा प्रसिद्ध मुगल-बादशाह बाबरका प्रबल शत्रु था; पृथ्वीराजकी वीरताकी बराबरी करनेवाला उस समय भारतवर्षमें कदाचित् दूसरा कोई नहीं था । सबसे छोटा जयमल भी वीरता

में इनके समान ही था। ये तीनों पराक्रमी भाई यदि आपसमें झगड़ा न करके मेल रखकर मातृभूमिकी भलाईकी बातें सोचते तो नहीं कहा जा सकता कि आज भारतकी कैसी अच्छी अवस्था होती। परन्तु भारतके भाग्यमें तो मुसलमानों का दास होना लिखा था नहीं तो वे क्यों एक दूसरेसे शत्रुता करके अपनी जड़ आप काटते! पुत्रोंके पारस्परिक झगड़ेसे राणा रायमलको बहुत कष्ट होने लगा; उनके राज्यकी शान्ति मिटने और सुख लोप होने लगे। मानों घोर अशान्ति और असंख्य विपदोंकी मूर्त्तियां हर समय अपने डरावने रूप दिखाती हुई चारों ओर दौड़ने लगीं। इन झगड़ोंको देखते देखते अन्तमें राणा रायमलके क्रोधकी आग भड़क उठी। उन्होंने देखा कि उनके तीनों पुत्र अपराधी और अत्यन्त कलह-प्रिय हैं; सो अपने राज्यमें पुनः शान्ति लानेके लिये उन्होंने उनको राज्यसे बाहर निकाल देनेका निश्चय किया। उनका प्रथम पुत्र सांगा इस विप्लवसे अपना बचाव करनेके लिये स्वयं देश छोड़कर चला गया; पृथ्वीराज अपनी लड़ाकी तबीयतके कारण निकाले गये, और छोटा जयमल एक अनुचित काम करके असमयमें ही इस संसारसे चल बसा। राजपूतोंके इन अनर्थ करनेवाले घराऊ झगड़ों पर विचार करनेसे उनके कठोर चरित्रका पूरी तरह परिचय मिल जाता है। ऐसे चरित्र पर ध्यान देनेसे स्पष्ट समझमें आ जाता है कि जब विदेशी शत्रुओंसे उनको लड़ना नहीं होता था तभी वे मूर्खोंकी तरह आपसमें लड़कर अपने देशका नाश करते थे।

सांगा और पृथ्वीराज सगे भाई थे। उनकी माता झालावंशकी थी। जयमल उनका सौतेला भाई था। देहलीके चौहान राजा पृथ्वीराजका नाम सभी पाठकों को स्मरण होगा। उस चौहान पृथ्वीराजसे इस सीसोदीय पृथ्वीराजकी अनेक बातें मिलती थीं। इन पवित्र नामके अपूर्व माहात्म्यका विचार करनेसे अद्भुत आनन्द होता है। इन दोनोंमें ऐसी समानता थी कि यदि हम उनको एक दूसरे की आकृति कहें तो अनुचित न होगा। सीसोदीय वीर पृथ्वीराजकी वीरता पर मेवाड़के लोग इतने मुग्ध हैं कि मेवाड़की इस वर्त्तमान गिरी हुई अवस्थामें भी उसकी वीरताका स्मरण करके वे अपना सब कष्ट भूल जाते और चित्तमें शान्ति पाते हैं। कभी कभी शिकार खेलकर लौटनेके बाद जब सीसोदीय लोग एकसाथ

भोजन करने बैठते हैं, या गर्मी के दिनोंमें सन्ध्याके समय ठंडी हवा सेवन करनेके लिये गलीचा बिछाकर किसी ऊँचे स्थानमें एकत्र बैठते और शर्बत पीते तथा पान चबाते हुए भाटोंके मुखसे वीरवर पृथ्वीराजकी वीरताका वर्णन सुनते हैं, तब उनके आनन्दका ठिकाना नहीं रहता। सांगा और पृथ्वीराजमें बहुत अन्तर था। यद्यपि दोनों समान वीर और साहसी थे, परन्तु सांगा विचारकर लड़ाईमें हाथ डालते और पृथ्वीराज हर समय लड़नेके लिये उत्सुक दिखाई देते; क्षण भर भी अपनी तलवार म्यानके अन्दर रखना उन्हें अच्छा न लगता। तलवारके ज़ोरसे अपनी भविष्य उन्नतिकी प्रतिज्ञा करके रात दिन वे कहा करते कि "ईश्वरने मेवाड़राज्यका शासन करनेके लिये मुझे पैदा किया है।" सांगा उनके बड़े भाई थे;—पिताके प्रथम पुत्र होनेके कारण राज्यका अधिकार पानेके योग्य वेही थे। परन्तु पृथ्वीराजके कारण वे इस स्वत्वका भोग न कर सके। अन्तमें इस बात पर राणा रायमल्लके इन् दोनों पुत्रोंमें झगड़ा होने लगा कि चित्तौड़का अधिकारी कौन होगा। प्रत्येक अपना अपना मतलब निकालनेके लिये उद्योग करने लगा।

एक दिन दोनों भाई अपने चचा सूर्यमलके पास बैठे उत्तराधिकारके विषयमें अनेक तरहके तर्क कर रहे थे, इस बीचमें सांगाने धीरेसे कहा, "न्यायसे मैं ही मेवाड़के १० सहस्र नगरोंका उत्तराधिकारी होनेके योग्य हूं; परन्तु आप लोग इसमें मेरा विरोध कर रहे हैं। अब इस झगड़ेको मीमांसा करनेका एकही उपाय है। यदि आप लोग नाहरा मुगराकी * चारणी देवीकी सेविकाके कहने पर विश्वास करें तो सब झगड़ा मिटकर अन्तिम फैसिला हो सकता है। यदि आप चलनेको तैयार हों तो सब लोग वहीं चले चलें। परन्तु पहले यह प्रतिज्ञा कर लीजिये कि वे जिसे पसन्द करेंगी वही चित्तौड़के सिंहासनका अधिकार प्राप्त करेगा।" सब इस बात पर सम्मत हुए और बुद्धिमान् सांगाके साथ चारणी देवीके सुनसान मन्दिरकी ओर चले। उस निर्जन पहाड़ी कन्दरामें पहुँचकर पृथ्वीराज और जयमल एक छोटे आसन पर बैठे। सामने एक व्याघ्रचर्म पड़ा था; सांगा उस पर अपनी एक जांघ रखकर बैठे। पृथ्वीराजने देवीकी सेविका योगिनीसे अपना मतलब कहा। उनकी बात सुनतेही संन्यासिनीने उस व्याघ्रचर्मको ओर

* नाहरा मुगरा उदयपुरसे ५ कोस पूर्व ओर है।

उँगली उठाई। इसका यह मतलब था कि सांगा राजा होंगे और सूर्यमल उनके राज्यके कुछ अंशका भोग करेंगे। उसी समय पृथ्वीराज तलवार खींच सांगाकी ओर झपटे, परन्तु सूर्यमलने बीचमें होकर उनका वार रोक दिया।

इधर चारणी देवीकी सेविका योगिनी अपना बचाव करनेके लिये दूर भागी। तब पृथ्वीराजने सूर्यमल पर आक्रमण किया। मन्दिरके भीतर घोर युद्ध होने लगा। यह युद्ध शीघ्र समाप्त नहीं हुआ; दोनोंके शरीरमें अनेक घाव लगे और स्थान स्थानसे खून बहने लगा; यहांतक कि रक्त बहने बहते वे शिथिल हो गये। सांगाके शरीरमें एक तीर लगा था और तलवारसे पांच स्थानोंमें घाव हो गये थे। तीरसे उनकी एक आंख नष्ट हो गई थी। अन्तमें वहांसे भागकर चतुर्भुजा देवीके मन्दिरकी ओरसे शिवली नगरीमें होते हुए वे जदावत् वंशके बीदा नामक एक राजपूतके पास पहुँचे। बीदा उस समय कहीं जानेके लिये घोड़े पर सवार हो रहा था, इतनेमें उसने इनको घायल और खूनमें लतपत अपनी ओर आते देखा। सांगाने उसके पास पहुँचकर आश्रयके लिये प्रार्थना की। परोपकारी दयावान् बीदाने तुरन्त उनको घोड़ेसे उतारा। इस अवसरमें जयमलने बहुत तेजीके साथ घोड़ा दौड़ाते हुए आकर सांगा पर आक्रमण किया। शरणमें आये हुए सांगाका जीवन बचानेके लिये बीदाने जयमलका वार अपने ऊपर रोका, यहां तक कि इस लड़ाईमें उसके प्राण चले गये। इधर अवसर पाकर सांगा वहांसे दूसरी जगह भागे।

घावोंसे चंगे हो जाने तथा शरीरमें पुनः बल आने पर पृथ्वीराज सांगाकी खोज करने लगे। सांगाने यह जानकर एक गुप्त स्थानसे दूसरे गुप्त स्थानमें भागना आरम्भ किया। इस प्रकार छिपे छिपे भागनेमें उन्हें अनेक कष्ट उपद्रव और आपत्तियां झेलनी पड़ीं। जो सांगा राणाके पुत्र थे, जो मेवाड़राज्यके उचित उत्तराधिकारी थे, उनको आज अपने प्राणोंके बचानेके लिये दीन और अनाथकी तरह वन वन भटकना पड़ा। आखिर कोई उपाय न देखकर सांगाने कुछ चरवाहोंके यहां नौकरी करली; परन्तु उनका नाम न जाननेके कारण वे इनको बहुत बुरा भला कहते और कभी कभी अपने पाससे दूर कर देते; जब ये गिड़गिड़ाते और हाथ पैर जोड़ते तब वे फिर इनको अपने यहां रहने देते और गाय भैंस बकरी

आदि चरानेका काम इनको सुपुर्द न कर रोटी बनानेको कहते; पर यह काम भी इनसे न होता । अतएव वे खेतिहर और चरवाहे यह कह कहकर कि "खाता तो ढाई सेर है पर काम कुछ नहीं करता" बारम्बार इनका तिरस्कार करते। सांगा इसी प्रकार दीनदशामें समय बिता रहे थे इतनेमें एक दिन कुछ राजपूतोंने आकर एक घोड़ा और कई अस्त्र शस्त्र दिये और इनको साथ लेकर श्रीनगरके † सरदार राव कर्मचन्द्रके पास गये। कर्मचन्द्र प्रमारवंशका राजपूत था और लुटेरोंका काम करता था। सांगाने उसके दलमें सम्मिलित होकर वही काम प्रारम्भ किया जो वह करता था। एक दिन सांगा लूटका काम समाप्त करके विश्रामके लिये एक बड़के पेड़के नीचे घोड़ेसे उतरे और म्यानकी सहित अपनी तलवार सिरके नीचे रखकर वहीं लेट गये, वे थके हुए थे अतएव तुरन्त उनको नींद आ गई । उस वृक्षकी दूसरी ओर कुछ दूर पर उनके तीन राजपूत साथी (जयसिंह, बालीय और जैमू) उनके लिये भोजन बना रहे थे । उनके घोड़े इधर उधर विचर रहे थे। उस बड़े बटवृक्षके घने पत्तोंको भेदकर सूर्यकी किरणें उनके मुख पर पड़ने लगीं। पासही एक बड़ा सर्प चक्कर मारे चुपचाप बैठा था। सांगाके मुख पर सूर्यकी गर्मी पड़ते देखकर उसने चक्कर छोड़ अपने हिलते हुए फणसे ‡ छाया कर दी। यह देखकर देवी ¶ नामक एक पक्षी उस फणीके फण पर बैठकर ज़ोर ज़ोर से चीत्कार करने लगा। ये सब बहुत अच्छे शकुन थे। इतनेमें सांगाकी नींद खुल गई। उस समय मारू नामक एक शाकुनिक उधरसे आ रहा था; उसने यह दृश्य देखा और शकुन देखकर वह समझ गया कि सांगा शीघ्र राज्यका अधिकार प्राप्त करेंगे। अतएव उसने झुककर इनको इस ढङ्गसे प्रणाम किया जैसे राजाओंको करना चाहिये । सांगा चतुर थे; वे भी मतलब समझ गये; पर बनावटी रुख दिखाकर उन्होंने उसका प्रणाम स्वीकार नहीं किया । मारूने आकर सब हाल कर्मचन्द्रसे कहा। कर्मचन्द्रने (भविष्य आशा देखकर) अपनी कन्याका विवाह

† यह श्रीनगर अजमेरके निकट है।

‡ संस्कृतमें यह शब्द "फणा" है, पर भाषाके व्यवहारके अनुसार हमने फण लिखा है।

¶ देवी पक्षी देखनेमें ठीक खञ्जन पक्षीकी तरह होता है ।

सांगाके साथ कर दिया और जबतक वे (अर्थात् सांगा) अपने पिताके सिंहासन के अधिकारी नहीं हुए तबतक उसने इनको बड़े यत्न और आदरके साथ अपने यहां रखा।

थोड़ेही दिनोंमें राणा रायमलने इस लड़ाई झगड़ेका सब हाल सुना। उन्होंने जाना कि पृथ्वीराजने उत्तराधिकारी सांगाके मार डालनेका विचार किया था। इससे पृथ्वीराजपर वे बहुत क्रुद्ध हुए और इस अन्याय कामके लिये उनको अपने पास बुलाकर उन्होंने बहुत धिक्कारा। कहा, "तुम मेरे राज्यसे निकल जाओ। तुम ऐसे उद्धत साहसी और झगड़ालू हो कि सहजमें अपनी जीविकाके चलाने का उपाय कर सकोगे।' तेजस्वी पृथ्वीराजने धैर्य्यके साथ पिताकी बातें सुन लीं; उनको जरा भी चिन्ता वा दुःख नहीं हुआ। केवल ५ सवारोंको अपने साथ लेकर वे पिताके राज्यके बाहर निकले और गोडारके अन्तर्गत बालियोड़ नामक नगरकी ओर चले †।

एक तो राणा कुम्भके मारे जानेसे मेवाड़राज्यकी शान्ति नष्ट हो चुकी थी, तिसपर भाइयोंके इस पारस्परिक झगड़ेसे और भी अशान्ति तथा अराजकता फैली। मेवाड़का प्रत्येक प्रदेश—विशेषकर गोडार—एकदम कुप्रबन्धमें पड़कर ऐसा हो गया कि उसकी रक्षा करना कठिन था। यह स्थान अर्थात् गोडार अरावलीके निकटही है; अतएव पहाड़ी असभ्य मीन बारम्बार आकर वहां लूट मार मचाते थे। ये पहाड़ी लोग उन सैनिकोंकी कुछ भी परवा नहीं करते थे जो गोडारकी राजधानी नादौलके रक्षक थे। वह सेना भी उनको रोक नहीं सकती थी। पृथ्वीराजने यह सब हाल सुना। बालियोड़को जाते समय नादौलमें कुछ समयतक ठहरनेका विचार कर आवश्यक चीजें खरीदनेके लिये वे ओझा नामक एक व्यापारीके यहां अपनी एक अंगूठी बन्धक रखने गये। पहले इसी ओझासे उन्होंने यह अंगूठी खरीदी थी, इसलिये उसने इनको पहचान लिया और फिर इनके बनावटी वेष बनानेका कारण जानकर इनको सहायता देनेकी भी प्रतिज्ञा की। तब पृथ्वीराजने उसे अपने दलमें मिला लिया और उसीकी सलाहके अनुसार दुष्ट

† पृथ्वीराजके साथियोंमेंसे ४ के नाम यशसिंहिल, संगम, अभय और जकु थे। पांचवां एक भाटेका राठौर था; उसका नाम विदित नहीं।

मीनाओंसे बचाकर वे गोडार राज्यमें शान्ति लानेका प्रबन्ध करने लगे। पृथ्वी राज वीर, साहसी और तेजस्वी थे। पिताने उनके गुणों पर ध्यान न देकर उनको राज्यके बाहर कर दिया था, पर इससे क्या उनकी शक्ति कम हो सकती थी? वे भली भांति जानते थे कि यदि राजाके घरमें उनका जन्म न होता तौभी अपनी शक्ति और पुरुषार्थसे अनेक विघ्न विपत्तियां दूर करते हुए वे किसी राज्य के अधिकारी हो सकते। अस्तु, उन्होंने प्रतिज्ञा की कि यद्यपि अभी पूरी सहायता नहीं है तौभी चाहे जैसी विपत्ति पड़े इस कामका उद्योग न छोड़ूंगा। ऐसी प्रतिज्ञा करके वीरवर पृथ्वीराज दुष्ट मीनाओंके पाससे गोडार राज्यका बचाव करनेके योग्य अवसरकी बाट देखने लगे। मीना लोग इन पहाड़ी स्थानोंके प्राचीन निवासी थे। सब पहाड़ी स्थान उनके अधिकारमें थे, समय पाकर राजपूतोंने उनपर आक्रमण किया और बलपूर्वक उनको हटाकर वहां अधिकार जमाया।

जिस समय पृथ्वीराज नाडौल नगरमें थे उस समय "रावत" उपाधिधारी एक मीना राजा नदालय नगरमें अपनी राजधानी स्थापित करके वहांका शासन कर रहा था। उसकी शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि बहुतसे राजपूत तक उसके यहां आ आकर नौकर होते थे। ओझाकी सम्मतिसे पृथ्वीराजने भी अपने साथियोंके सहित उसके यहां जाकर नौकरी करली। राजपूत होकर भी अपना असली हाल छिपाये हुए वे असभ्य मीनाओंके यहां रहने और गोडार राज्यका उद्धार करनेके योग्य अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे। भाग्यसे अच्छा अवसर स्वयं आ गया। मीनाओंमें अहेरिया-महोत्सव * होता था। इस अवसर पर नौकरोंको कई दिनोंकी स्वाधीनता दी जाती थी और वे इस छुट्टीमें अपने घरवालोंसे मिलने या जहां इच्छा हो चले जाते थे। पृथ्वीराजने भी कई दिनोंकी छुट्टी पाई और इस बीचमें अपना मनोरथ पूर्ण करनेके लिये वे बहुत उत्सुक हुए। नगरके बाहर आकर उन्होंने अपने राजपूत साथियोंको एकत्रित किया और अपने मनकी बात उनको बतलाकर कहा कि मीनाओंके राजा पर आक्रमण करो। आज्ञा पातेही सब राजपूत आक्रमण करनेके लिये दौड़े। थोड़ीही देरमें नगरमें महा उथलपथल मच गया। वीर राजपूतोंके सामने ठहर न सककर वे इधर उधर भागने लगे। पृथ्वी-

* शिकारियोंका महोत्सव (Hunter's festival.)

राज नगरके बाहरके फाटक पर चुपचाप खड़े वह तमाशा देख रहे थे। देखतेही देखते मार काटका बजार और भी गर्म हुआ। इस मार काटसे अपना बचाव करनेके लिये मीनाओंका राजा घोड़े पर सवार होकर नगरके बाहरकी ओर भागा पृथ्वीराजने तुरन्त उसका पीछा करके भालेसे उठाकर उसे एक जंगली पेड़के ऊपर डाल दिया। इस प्रकार असभ्य मीनाओंके दुष्ट राजाके प्राणोंका अन्त हुआ। इसके बाद पृथ्वीराजने नदालय तथा उसके सबके नगरों गांवों और बस्तियोंमें आग लगाकर मीनाओंको पशुओंकी तरह जलाना प्रारम्भ किया। आगसे व्याकुल होकर मीना लोग इधर उधर भागने लगे, पर उनका निस्तार नहीं हुआ। प्रायः सभी पृथ्वीराज और उनके साथियोंके हाथोंमें पड़कर मारे गये। केवल एक दुर्गको छोड़ समस्त गोड़ार प्रदेश पृथ्वीराजके हाथ लगा। जो दुर्ग बच गया उसका नाम देसूरी था और वह माद्रेचा चौहानोंके अधिकारमें था।

मीनाओंके हाथसे गोड़ार राज्यका पुनरुद्धार करके वीरवर पृथ्वीराजने ओझा और सहा नामक एक सोलङ्की राजपूतको वहांका शासनकर्त्ता नियुक्त किया। सहा सोलङ्कीने इसी समय सोदगढ़ पर अधिकार किया था। पाटण नगरका ध्वंस होनेके बाद उसका कोई पूर्वपुरुष इन पहाड़ोंमें आ बसा था। ऊपर लिखे माद्रेचा चौहानकी कन्याका विवाह सहाके साथ हुआ था, इसलिये इसने अपने ससुरका पक्ष छोड़कर पृथ्वीराजका साथ देना स्वीकार नहीं किया; परन्तु जब पृथ्वीराजने देसूरी नगर और उसकी भूमिवृत्ति सदाके लिये दी तब उसे इनके पक्षमें होनेको विवश होना पड़ा *। यह सब हाल शीघ्र राणा रायमलके कानों तक पहुंचा; तब उन्होंने पृथ्वीराजसे सन्तुष्ट होकर पुनः उनको राज्यमें बुला लिया।

पृथ्वीराज पिताके राज्यमें लौट आये। उसी समय जयमलके मारेजानेसे वे और भी निष्कण्टक हो गये। इस जगह आवश्यकता समझकर हम जयमलकी मृत्युका वृत्तान्त लिखते हैं। प्राचीन तक्षशिलाको † अब लोग तोडातङ्क कहते थे। राव

---

* इस भूमिवृत्तिके दानपत्रमें पृथ्वीराजने अपने वंशधरोंके प्रति लिखा था कि वे उसे लौटा न लें। उनके वंशधरोंने इस आज्ञाका पालन किया।

† प्राचीन तक्षक सुन्दर सुन्दर इमारतें बनवानेके बड़े प्रेमी थे। इसका पता उनकी स्थापित तक्षशीला नगरीके राजमहलसे लगता है। यद्यपि यह नगरी

सूरथान* वहांके अधिकारी थे। जो चौलुक्य राजे बहुत दिनों तक अणहलवाड़ा पाटणके अधिकारी थे राव सूरथान उन्हींके वंशके थे। तेरहवीं शताब्दीमें अलाउद्दीनने सूरथानके पूर्वजोंको पाटणसे हटा दिया था; उस समय वे भारतके मध्य-प्रदेशमें आ बसे थे। वहां आनेके बाद उन्होंने तोडातङ्क पर अधिकार किया; परन्तु उनके वंशधर बहुत दिनों तक इस स्थानके अधिकारी न रह सके। अन्तमें अफगानियोंने सूरथान रावको वहांसे हटाया; तब वे अरावलीके नीचे बेदनोर नगरमें चले गये और वहां रहने लगे। राव सूरथानको ताराबाई नामकी एक अत्यन्त रूपवती कन्या थी। 'यही 'तारा' उनके दुःखरूपी अन्धकारकी एकमात्र 'तारा' थी; इसीको देखकर उनको धैर्य होता था। यही उनके जीवनकी आन और भविष्यकी आशा थी। ताराबाई छोटी उमरसेही दुःखमें रही। वह राजकन्या थी—गौरवशाली पवित्र सोलङ्की कुलकी खिली हुई कमलिनी थी; परन्तु भाग्यदोषसे आज उसके पूर्व गौरवका कुछ भी चिन्ह दिखाई नहीं देता था। बचपनमें जब वह अपने पिताकी गोदमें जाकर लेटती तब राव सूरथान उसे उसके पूर्वजोंके गुप्त गौरवको अनेक कहानियां सुनाते; बालिका उन कहानियोंको बड़े ध्यानसे सुनती। बचपनकी वे कहानियां—पिताके मुखसे सुनी हुई वे मनोहर बातें—उसे सदा याद रहीं। धीरे धीरे जब उसे ज्ञान हुआ और उसने अपने पूर्वजोंकी दशासे अपनी दशाका मिलान किया तो दोनोंमें बहुत अन्तर पाया। उस सुकुमार अवस्थामेंही चिन्ताने उसके हृदयमें प्रवेश किया। चिन्ता करती करती वह कभी कभी बहुत अधीर हो जाती और अपने भाग्यको धिक्कारती। इसी उमरमें स्त्रियोंके आचार व्यवहार और बनावट चुनावटसे उसे घृणा हुई। घोड़े पर सवार होना, तीर चलाना, युद्ध करना इत्यादि वह सीखने लगी। धीरे धीरे इस विद्यामें वह ऐसी निपुण हो गई कि बड़ी तेजीके साथ घोड़ा दौड़ाती हुई निशाने पर तीर मार लेती थी। राव सूरथानने कई बार तोडातङ्कका उद्धार करनेका उद्योग किया था; वीर

अब एकदम नष्ट हो गई है, तथापि इसके बचे खुचे चिन्हसे इसके पूर्व गौरवका पूर्ण परिचय मिलता है।

* इस स्थान पर टाड साहब लिखते हैं—This is a genuine Hindu name, the 'Hero's refuge from;' *Soor* (सूर) a warrior, *Than* (थान) an abode

नारी तारा हर अवसर पर काठियावाड़ी घोड़े पर सवार होकर उनके साथ युद्धस्थलमें गई थी ❋। उसकी अपूर्व रणकुशलता देखकर बड़े बड़े वीर योद्धाओंने सिर नीचे कर लिये थे; अनेक मुसलमान सैनिक उसके तीरोंसे घायल होकर भूमिशायी हुए थे। उसकी वीरता तथा सौन्दर्य पर मोहित होकर बहुतसे राजपूतोंको उसके पानेकी लालसा लगी परन्तु राव शूरथानकी प्रतिज्ञा सुनकर उनको कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि "जो राजपूत मुसलमानोंके हाथसे तोडार्तकका उद्धार करेगा, वही पुरस्कारमें ताराको पा सकेगा।" आखिर जयमलको कुछ साहस हुआ और बेदनोर जाकर उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की; परन्तु वीराङ्गना ताराबाईने कहा "तोडाका उद्धार करिये, तब मुझे पा सकियेगा।" जयमलने यह बात स्वीकार की; परन्तु ताराके रूप पर वे ऐसे मोहित हो गये थे कि अपनी प्रतिज्ञाका पालन किये बिनाही मूर्खतासे दूसरे उपायके द्वारा अपना मतलब निकालनेका उद्योग करने लगे। इस बातसे बहुत क्रुद्ध होकर राव शूरथानने उनको मार डाला। इस जगह भट्टकवियोंने लिखा है कि "तारा जयमलके भाग्यकी अनुकूल 'तारा' नहीं थी।"

जिस समय ऊपर लिखी घटना हुई उस समय सांगा अज्ञातवासमें थे; पृथ्वीराज भी निकाले हुए थे, अतएव मेवाड़के सब लोगोंने जयमलको ही उत्तराधिकारी बनाना स्थिर किया था; परन्तु वे (जयमल) अपने दुर्भाग्यसे राव शूरथानके हाथों मारे गये। राणा रायमलके सभासद् जयमलकी मृत्युका हाल कहकर बारम्बार उनको उत्साहित करने लगे कि वे राव शूरथानसे बदला लें; परन्तु राणाजीने उदारभावसे उत्तर दिया कि "जिस मूर्खने अयोग्य रीतिसे एक प्रतिष्ठित विशेषकर कष्टमें पड़े हुए व्यक्तिको इस प्रकार अपमानित करना चाहा

❋ भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रने क्षत्राणियोंकी प्रशंसामें एक गीत लिखा है। वह यह है,—

"धन धन भारतकी क्षत्रानी।
वीरकन्यका, वीर-प्रसविनी, वीरवधू जगजानी॥
सतीशिरोमणि, धर्मधुरन्धर, बुधिबल-धीरज खानी।
इनके यशकी तिहूं लोकमें अमल धुजा फहरानी॥"

उसको उसके दुराचरणका उचित फल मिल गया।" उदारहृदय राणा रायमल इतनाही कहकर शान्त नहीं हुए, किन्तु सोलङ्की सरदार राव शूरथानको उन्होंने बेदनोर स्थान भूमिवृत्तिमें दिया।

जिस समय जयमल राव शूरथानके द्वारा मारे गये उस समय वीरवर पृथ्वीराज अपने राज्यसे निकाले जाकर मारवाड़राज्यमें रहते थे; परन्तु अधिक दिनों तक उनको इस अवस्थामें नहीं रहना पड़ा। दुष्ट मीनाओंके हाथसे गोड़वार राज्यका उद्धार करतेही पिताकी उनपर स्नेहदृष्टि पड़ी। उनसे सन्तुष्ट होकर रायमलने पुनः उनको राज्यमें बुला लिया। इससे पहलेही उनके वीरत्व और यशकी बातें राजपूतानेमें चारों ओर फैल चुकी थीं। रूपलावण्यवती तारा उनकी अतुल वीरताकी बातें पहलेहीसे सुन सुनकर मनही मन उनको अपना पति बनाना निश्चित कर चुकी थी। इस समय पृथ्वीराजका स्वदेशमें लौटना सुनकर ताराके आनन्दकी सीमा न रही। इधर पृथ्वीराजने भी राज्यमें आकर वीरनारी ताराका वृत्तान्त सुना और उनके हृदयमें उसके पानेकी लालसा लगी। इस लालसासे उत्साहित होकर अपनी प्रियतमाको देखनेके लिये वे बेदनोरकी ओर चले। राव शूरथानने आदर और सम्मानके साथ उनको अपने यहां टिकाया। चित्तविनोदिनी ताराका उनका सामना हुआ। दोनोंने एक दूसरेको जी भरके देखा। दोनोंके हृदयमें बहुतसी आशाएँ और बहुत प्रकारकी सुखमयी चिन्ताएँ उदित हुईं। पृथ्वीराजने राव शूरथानसे अपना मतलब कहकर कहा "आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें; दुष्ट शत्रुओंको मैं अवश्य तोड़ातंकसे निकाल बाहर करूँगा। एकही सप्ताहमें आप वहां शत्रुओंका चिन्ह भी न पावेंगे।" विदा होनेके समय पृथ्वीराज तारासे मिलने गये और प्रेमभरे मधुर शब्दोंमें उन्होंने उससे कहा,—"सुन्दरि, तुम्हारे पानेकी आशासे ही मैं ऐसे कठिन काममें हाथ डालता हूं; मेरी आशा निष्फल न करना।" ताराबाईने बहुत धीरे स्वरमें नम्रताके साथ उत्तर दिया "वीरवर, यह हृदय आपहीका है; आपहीके लिये अनेक कष्ट और उपद्रव सहकर भी अभीतक यह दृढ़ है। मेरा यही निवेदन है कि जो कठोर व्रत आपने धारण किया है पूरी तरह उसका उद्यापन करनेका यत्न कीजिये; दुष्ट शत्रुओंको दूर भगाकर सच्ची राजपूती वीरताका परिचय दीजिये।" पृथ्वी-

राज अवसर देखने लगे । अवसर मिल गया। मुहर्रमके समय वे पांच छः चुने हुए सवारोंको साथ लेकर तोडातंककी ओर चले । वीरनारी तारा तलवार तीर धनुष इत्यादिसे अपनेको सजाये उनके साथ साथ चली;—रणचण्डी पुरुषका वेष धरकर समरभूमिमें उतरी। कौन आज शत्रुओंकी रक्षा करता ?

पृथ्वीराज आदि उस समय तोडातंक नगरमें पहुँचे जब कि वहांके मुसलमान ताजिये लेकर बड़ी धूमधामके साथ दुर्गके बाहर निकल रहे थे। पृथ्वीराज अपने दलके सहित जाकर ताजियेवालोंमे मिल गये। इनको देखकर पहले मुसलमानों को विशेष सन्देह नहीं हुआ इसलिये इन लोगोंको अपना काम निकालनेका और भी अच्छा अवसर मिल गया। ताजिये धीरे धीरे राजमहलके सामने पहुँचे। महलके बरामदेमें मुसलमान अधिकारी कपड़े पहन रहा था; इन अपरचित सवारोंको देखकर उसे अनेक प्रकारकी शङ्काएँ हुईं। अभी वह किसीके द्वारा इन राजपूतोंका परिचय पुछवानेका विचारही कर रहा था कि इतनेमें वीरनारी ताराने उसपर एक तीर छोड़ा; साथही पृथ्वीराजने भी एक तीर मारकर उस अधिकारीको भूमि पर गिरा दिया । अफगान अधिकारीके मारे जातेही महा कोलाहल मचा; सब मुसलमान ताजिये ले लेकर इधर उधर भागने लगे। पृथ्वीराज दलबलके सहित उनपर टूट पड़े। मारते काटते ये लोग दुर्गके भीतरी फाटक पर पहुंचे, पर उसके अन्दर प्रवेश न कर सके। एक बहुत बड़ा मतवाला हाथी अपना शुण्ड हिलाता हुआ द्वार रोके खड़ा था । वीर-रमणी ताराने तीर मारकर उसका सूंड़ काट दिया। बड़े कष्टसे चिग्घाड़ता हुआ वह हाथी दूर भागा। तब मुसलमानोंने अन्तिम साहससे उत्तेजित होकर बड़ी वीरताके साथ पृथ्वीराजके दल पर आक्रमण किया। दोनों दलोंमें खूब युद्ध होने लगा। थोड़ी देरमें वे पराजित हो कर इधर उधर भागने लगे; पर कहां जाते ? जिधर जिधर वे भागते थे उधरही उधर पृथ्वीराज और उनके सेवक घेर घेरकर उनको मारते थे। इस प्रकार तोडातंकका उद्धार करके पृथ्वीराजने अपना व्रत पूरा किया और इसके फलमें सुन्दरी ताराको पाया। जिस झगड़ेमें पड़कर सांगा, पृथ्वीराज और जयमल भिन्न भिन्न दशाको प्राप्त हुए थे उसके कारण चतुर सूर्यमल थे । जिस दिन चारणी देवीकी सेविका योगिनीसे उन्होंने सुना था कि उनके भी चित्तौड़राज्यका कुछ सुख पाने

की सम्भावना है, उसी दिनसे उनके मनमें एक नई आशा उपज आई थी। क्षण भरके लिये भी यह आशा उनसे अलग नहीं हुई। जहां वे जाते वहीं इसका ध्यान उनको बना रहता। अन्तमें उन्होंने निश्चय किया कि चाहे कितनीही विपत्तियां पड़ें और कैसेही विघ्न उपस्थित हों मैं अवश्य इस आशाके पूर्ण करनेका उद्योग करूंगा। परन्तु जब पृथ्वीराज अपने देशमें लौट आये तब उनके मतलबके सिद्ध होनेमें बहुत बड़ी रुकावट पड़ गई। इस रुकावटके दूर करनेका कोई दूसरा उपाय न देखकर वे सारंगदेव नामक एक राजपूतको साथ लेकर मालवाके अधिकारी मुजफ्फरके पास गये। मुजफ्फरने इनकी सहायताके लिये एक सेना भेजी। उस सेनाकी सहायतासे सूर्यमल्लने मेवाड़के दक्षिणके प्रदेश पर आक्रमण किया। थोड़ेही समयमें सादरी, बाटूरी और नाई तथा नीमचके बीचका स्थान अपने अधिकारमें करके वे चित्तौड़के भी लेनेका उद्योग करने लगे। अब राणा रायमल अधिक क्षमा नहीं कर सके; उनके पास जो थोड़ी सेना थी उसीको लेकर वे शत्रुओंसे लड़नेके लिये युद्धभूमिमें गये। गम्भीरी नदीके किनारे लड़ाई हुई। राणा स्वयं साधारण सैनिककी तरह हाथमें तलवार लेकर लड़ने लगे। लड़ते लड़ते उनके शरीरमें २२ स्थानोंमें घाव हो गये। सारा अंग घायल था; बाइसों घावोंसे बराबर रक्त बह रहा था; तिस पर भी राणा रायमलने विश्राम नहीं लिया। धीरे धीरे अङ्ग प्रत्यङ्ग सुस्त पड़ने लगे और मूर्च्छाके पूर्व लक्षण दिखाई दिये। इसी समय पृथ्वीराजने एक सहस्र वीर सवारोंके साथ आकर उनका साथ दिया और राणाजीको युद्धक्षेत्रसे दूसरी जगह भेजकर बड़े साहसके साथ शत्रुओंका सामना किया। क्रोधी सिंहकी तरह वे सूर्यमल्लको खोजते हुए शत्रुदलमें घूमने लगे। युद्धनिपुण सूर्यमल तुरन्त उनके सामने आये; पृथ्वीराजने बड़ी तेजीके साथ झपट कर उनपर आक्रमण किया। दोनोंमें युद्ध होने लगा। सूर्यमल बहुत घायल हो गये तौभी युद्धभूमिसे न हटे। बहुत देर तक दोनोंमें घोर युद्ध होता रहा; दोनों दलोंके बहुतसे सैनिक मारे गये; परन्तु किसीकी जीत नहीं हुई। अन्तमें सब थक कर उस दिन विश्राम करनेके लिये अपने अपने पड़ावको लौटे।

डेरे पर लौटकर लड़ाईकी थकावट दूर करनेके बाद पृथ्वीराज अपने चचा सूर्यमलसे मिलनेके लिये उनके तम्बूमें गये। इस समय दोनोंमें जो बातें हुईं उ

नका वृत्तान्त * पढ़नेसे वीर राजपूतोंके अद्भुत माहात्म्यका स्पष्ट परिचय मिलता है। संसारके इतिहासमें किसी दूसरी जातिके चरित्रसे ऐसे माहात्म्यकी झलक नहीं दिखाई देती। सच पूछिये तो राजपूतोंके जीवनके साथ उनका यह बड़प्पन चिमटा हुआ है। जिस दिन उनमें यह माहात्म्य न रहेगा, उस दिन राजपूत नाम भी संसारसे लोप हो जायगा। हाय! उस दिनका स्मरण करनेसे छाती फटने लगती है। अस्तु, जब पृथ्वीराज अपने चचा सूर्यमलके छोटे खेमेमें पहुंचे तब उन्होंने देखा कि वे एक साधारण पलंग पर पड़े हुए हैं; उनका शरीर घावोंसे भरा हुआ है और एक हज्जाम उनके घावोंको धोता सींता और उनपर पट्टियां चढ़ाता है। जो पृथ्वीराज सूर्यमलके बड़े भारी विरोधी थे, जिनके कारण उनकी इतनी दुर्दशा हुई थी, जिनको रणभूमिमें मार डालनेका उन्होंने बहुत उद्योग किया था, आज उनको अपने सामने देखकर वीरहृदय सूर्यमल पलंगसे उठ खड़े हुए और आदरपूर्वक बैठाया। दोनोंके आकार प्रकारसे जान पड़ता था कि मानों उनमें कभी कुछ द्वेष था ही नहीं, पलंगसे उठते समय ज़ोर पड़नेके कारण सूर्यमलके घाव फिर फट गये और उनमेंसे खून बहने लगा; यह देखकर पृथ्वीराजको हृदयमें चोटसी लगी; परन्तु सूर्यमलके मुख पर किसी प्रकारके कष्टका चिह्न नहीं दिखाई दिया। उन्होंने अपने भतीजे पृथ्वीराजको अपने पास बैठाया और फिर दोनोंमें बातें होने लगीं।

पृथ्वीराजने पूछा—"काका, आपके घाव कैसे हैं?"

सूर्यमल—"बेटा, तुमको देखकर मुझको इतना आनन्द हुआ कि मैं सब कष्ट भूल गया।"

पृथ्वीराज—"काका, दीवानजीसे † अभीतक मैं नहीं मिला हूं; आपको देखनेके लिये जल्दी यहां चला आया। परन्तु मुझे बहुत भूख लगी है; आपके पास खानेको कोई चीज है?"

---

* सूर्यमलके बाद जो झाला सरदार सादरीका अधिकारी हुआ था उसके पुस्तकालयके एक ग्रन्थमें यह वृत्तान्त विस्तारके साथ लिखा हुआ है।

† राणा भगवान् एकलिङ्गके दीवान समझे जाते थे, इस कारण प्रायः लोग उनको "दीवानजी" कहते थे।

सूर्य्यमल बहुत आनन्दित हुए; तुरन्त भोजनकी सामग्री एकत्रित की गई और दोनोंने एकसाथ बैठकर भोजन किया; पृथ्वीराजको जरा भी सन्देह नहीं हुआ; और तो क्या चलते समय पान ❁ खानेमें भी उन्होंने कुछ आगापीछा नहीं किया। विदा होनेसे पहले उन्होंने बड़ी नम्रताके साथ सूर्य्यमलसे पूछा—"क्यों काका, कल तो मेरा आपका युद्ध समाप्त होगा?"

सूर्य्यमल—"हां हां बेटा, जरा जल्दी आना।"

रात बीती और सबेरा हुआ। सूर्योदयसे पहले ही सूर्य्यमल और पृथ्वीराज युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हुए। उस समय चचा भतीजाने किसीकी चिन्ता नहीं की। स्नेह ममता, दया इत्यादिकी परवा न करके स्वार्थके लिये वे एक दूसरेकी ओर दौड़े। उस दिन सारंगदेवने ही सबसे अधिक वीरता दिखाई। अद्भुत बलसे निरन्तर तलवार चलाता हुआ वह पृथ्वीराजकी सेनाको मथित करने लगा; परन्तु उसके शरीरमें भी ३५ घाव लगे। इस भयानक लड़ाईमें दोनों ओरके बहुतसे सैनिक मारे गये; सभी राजपूतकुलोंके असंख्य वीर समरभूमिमें गिरे। लगभग डेढ़ घंटेमें तलवारों, ढालों, तीरों धनुषों और भालों इत्यादिके ढेर लग गये। बहुत वीरता दिखाने पर भी ये युद्धमें विजयी न हो सके; पृथ्वीराजके आगे ठहर न सककर अन्तमें सादरीकी ओर भागे, विजयी वीरवर पृथ्वीराज चित्तौड़को लौटे; इस युद्धमें उनके शरीरके सात स्थानोंमें घाव हो गये थे। अस्तु, पराजित होकर भी विद्रोही सूर्य्यमल आशाको न छोड़ सके। जिस आशाके भरोसे उन्होंने इतने कष्ट सहे इतनी आपदाएँ भोगीं, जिसकी सफलताके लिये वे अपने प्राण तक देनेको तैयार थे, भला वह आशा कैसे छूट सकती थी? अतएव बारंबार पराजित और अपमानित होने पर भी उन्होंने चित्तौड़के पानेकी प्यारी आशा नहीं छोड़ी, वरन् जैसे हो वैसे इस आशाको पूर्ण करनेके लिये वे रात दिन सब समय युद्धकी तैयारीहीमें बिताने लगे।

इस प्रकार बहुत दिन बीत गये। चचा और भतीजा कई बार एक दूसरेसे लड़े; पर फल कुछ नहीं हुआ। सूर्य्यमलका साहस और उद्योग कम नहीं हुआ।

❁ विश्वासघातक और दुष्ट लोग प्रायः पानके बीड़ेके साथ विष वा विष मिली हुई वस्तु दे दिया करते हैं। ऐसे उदाहरण सब जगह मिलते हैं।

पृथ्वीराजसे जब कभी उनकी मुलाकात होती तभी पृथ्वीराज कहते कि "जबतक मेरे शरीरमें एक बूंद भी रक्त रहेगा तबतक मेवाड़की एक सूईकी नोक बराबर भी भूमि मैं आपके अधिकारमें नहीं होने दूंगा।" सूर्यमल भी इसी प्रकार कठोर स्वरमें कहते कि "सोनेके लिये तुम्हें जितनी भूमि दरकार होगी उससे अधिकका अधिकारी तुम्हें कभी नहीं होने दूंगा।" आशामें पड़कर सूर्यमलने पृथ्वीराजसे झगड़ा किया; परन्तु किसी प्रकार वे अपने मनकी अभिलाषा पूरी न कर सके। तेजस्वी पृथ्वीराजकी कड़ी दृष्टिके आंचके कारण उनको सदा दूरही दूर रहना पड़ता। वे जहां जाते वहीं पृथ्वीराज उनका पीछा करके आक्रमण करते। पृथ्वीराजके डरसे उनको सदा सचेत और सावधान रहना पड़ता। इस प्रकार एकसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे स्थानमें वे भागते। एक समय सूर्यमल्ल बाटूरो नामक घने वनमें पहुँचे और उसके सबसे घने स्थानमें वृक्षोंकी बड़ी बड़ी शाखाओं और पत्तों से एक कुटी बनाकर उसीमें रहने लगे। उसी वनमें उनके घोड़े और सैनिक भी रहे। एक दिन रातके समय सूर्यमल वनमें सारङ्गदेवके साथ बैठे आग सेंकते हुए युद्धके विषयमें अनेक बातें कर रहे थे, इतनेमें असंख्य घोड़ोंके हिनहिनाने और उनकी टापोंके शब्दोंने उस जङ्गलका सन्नाटा तोड़ दिया। साथही इन दोनोंकी बातचीत भी रुक गई। दोनों चकित हुए और घबराई हुई दृष्टिसे सारङ्गदेवकी ओर देखकर सूर्यमलने कहा "दूसरा कोई नहीं है; ये सवार पृथ्वीराजके साथ आ रहे हैं।" सूर्यमलकी बात समाप्त होते न होते वीरवर पृथ्वीराज आ पहुँचे। महा कोलाहल मचा। अस्त्र शस्त्रोंके झनकार और लड़ाईके माते सैनिकोंके चिग्घाड़से सारा वन गूंज उठा। पृथ्वीराजने घोड़ेसे कूदकर सूर्यमल पर आक्रमण किया। उनके एकही आघातसे सूर्यमल भूमि पर गिर पड़े; परन्तु उनको बचाकर निन्दा करते हुए सारंगदेव पृथ्वीराजसे बोले "यहांका एक घूंसा पहलेकी बीस तलवारोंकी चोटसे अधिक असह्य है।" इसपर सूर्यमलने कहा "तभी जब कि मेरे भतीजेके हाथसे लगे।" अस्तु, उस रात सूर्यमल न लड़ सके; लड़ाई बन्द करनेका अनुरोध करके नम्र शब्दोंमें उन्होंने पृथ्वीराजसे कहा,—"बेटा, यदि मैं मारा जाऊँगा तो मेरी कुछ भी हानि नहीं होगी। मेरे पुत्र राजपूत हैं, देश देश घूमकर अपनी जीविका चला लेंगे; परन्तु यदि तुम मारे जाओगे तो चित्तौड़की

क्या दशा होगी ? मेरे मुखमें कालिख लगेगी और मैं किसीके सामने मुख दिखाने योग्य न रहूंगा; सदाके लिये बदनाम हो जाऊँगा।"

युद्ध बन्द हुआ; चचा भतीजे अपनी अपनी तलवार म्यानोंके अन्दर रख कुछ समयके लिये शत्रुता भूलकर एक दूसरेसे गले मिले। इसके बाद पृथ्वीराजने पूछा, "काका, जब मैं आया तो आप क्या करते थे ?"

सूर्यमल—"बेटा, और क्या करता होता ? भोजनादिसे निश्चिन्त होकर इधर उधरकी बातें करता था।"

पृथ्वीराज—"काका, मेरे जैसा शत्रु सिर पर होते भी आप निश्चिन्त कैसे हुए ?"

सूर्यमल—"क्या करता ? तुमने एकदम मुझको निराश्रय कर रखा है; आखिर कहीं तो विश्रामके लिये सिर टेकनाही होगा।"

कुछ देर तक दोनों चुप रहे। सैनिक तथा नौकर आदि थकावट दूर करने का प्रबन्ध करने लगे। इसके बाद पृथ्वीराजने पूछा "काका, मैंने सुना है कि इस स्थानके निकट जो कालिका देवी है वे बहुत जाग्रत हैं; अतएव कल सुबह मैं उनकी पूजाको जाऊंगा। आप भी चलेंगे या अपने बदलेमें सारंगदेवको भेजेंगे ?"

सूर्यमलने कुछ सोचकर निष्कपट चित्तसे कहा "बेटा, मेरा शरीर बहुत निर्बल हो रहा है, अतएव मैं नहीं जा सकूंगा, परन्तु जिसमें कि तुम दुःखित न हो सारंगदेवको भेज दूंगा।" पृथ्वीराज इसी पर राजी हो गये। दूसरे दिन प्रातःकाल वे कालीपूजनको गये। क्रमशः बलिदानका समय आया। कालिका देवीके सामने एक भैंसा मारा गया; इसके बाद एक बकरेकी बलि चढ़नेको थी कि इतनेमें पृथ्वीराजने पलट कर सारंगदेव पर आक्रमण कर दिया। सारंगदेवके पास भी अस्त्र शस्त्र थे, अतएव दोनोंमें खूब लड़ाई होने लगी; दोनोंके शरीरमें अनेक घाव लगे; परन्तु अन्तमें सारंगदेव पराजित हुआ; विजयी पृथ्वीराजने उसका सिर काटकर भवानीको चढ़ा दिया। इसके बाद जाकर उन्होंने सूर्यमलका झोपड़ा लूट लिया और फिर बाटूरो नगर पर अधिकार किया।

सूर्यमलके कष्टका ठिकाना न रहा। जिस आशाके भरोसे उन्होंने इतने उपद्रव सहे वह क्या हुई ? पद पद पर विपत्तियां सहनी पड़ीं; भाई, बन्धु, आत्मीय स्वजन, सब छूटे; सदाके लिये उनका नाम राजविद्रोहियोंमें लिख गया; परन्तु क्या

उनकी आशा फलवती हुई? प्राण बचानेका कोई उपाय न देखकर वे सादरीको चले गये। वहां पहुँचकर उन्होंने एक नई बात सोची। इससे पहले उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि यदि सादरीका अधिकार अपनेको न रहेगा तो उसे ऐसे लोगोंको दे देंगे जिनसे राजा इच्छा करने पर भी न छीन सके। अतएव ब्राह्मणों * और भाटोंको सादरीका अधिकार सौंपकर वे मेवाड़की भूमिके बाहर चले गये। उदास मनसे सूर्यमल खनथल नामक घने बनमें आ रहे थे इतनेमें उन्होंने देखा कि एक भेड़िया एक बकरीके बच्चेको उठा ले जानेका बारम्बार यत्न कर रहा है, पर उसकी मां उसे बचाये हुए है जिससे भेड़ियेकी इच्छा पूरी नहीं होती है। यह देखकर सूर्यमलको चारणीदेवीकी सेविका योगिनीकी बात सहसा याद आ गई। उनको मालूम हो गया कि इस स्थानमें रहनेसे कोई न हटा सकेगा। यह बात मनमें आतेही सूर्यमल वहां रहने लगे और वहांके प्राचीन असभ्य निवासियों को परास्त कर उस जगह उन्होंने देवल नामक एक दुर्ग बनवाया। थोड़ेही दिनों में इस दुर्गके चारों ओरके एक सहस्र गांवके अधिकारी वे हो गये। इसी प्रकार प्रतापगढ़ देवल स्थापित हुआ था।

विजयी पृथ्वीराज बड़े गौरव और धूमधामके साथ अपने राज्यको लौटे। राणा रायमलने आदरपूर्वक उनको ग्रहण किया। जिस पृथ्वीराजको एक समय राणा रायमलने रुष्ट होकर अपने राज्यके बाहर कर दिया था आज उसी पुत्र पृथ्वीराजको पाकर वे बहुत आनन्दित हुए और उसके गौरवसे उन्होंने अपना गौरव समझा। परन्तु दुर्भाग्यसे पृथ्वीराज अधिक दिनोंतक इस गौरव और बड़ाईका सुख न भोग सके। कपटीकी कपटतासे असमयमें इस संसारसे वे बिदा हो गये। चचा सूर्यमल पर विजय प्राप्त करके कुछ दिनतक चित्तौड़में रहनेके बाद वे अपने निवासस्थान कमलमीर दुर्गको चले गये। वहां वे बड़े भाई सांगाकी खोज करने

---

* जो व्यक्ति ब्रह्मस्व हरता है हिन्दूशास्त्रके मतसे उसे साठ सहस्र वर्ष विष्ठा का कीड़ा होकर नरकमें रहना पड़ता है। भागवतमें लिखा है,—

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते क्रिमिः॥

और बड़े सुखसे प्रियतमा ताराके साथ रहने लगे। इसी समय उनको उनकी बहिनका एक पत्र मिला। उनकी बहिन सिरोहीके अधिपति पाभूरायके साथ ब्याही हुई थी। पाभूराय बड़े नशेबाज थे; अफीम या नशेकी और कोई चीज खाकर मदमाती अवस्थामें समय बिताते थे। जब बहुत नशा चढ़ जाता था तब उनको किसी बातका ज्ञान नहीं रहता था। अपनी स्त्रीके साथ वे अनेक प्रकारके अनुचित व्यवहार करते थे;—कभी गालियां देते थे, कभी मारनेको तैयार होजाते थे और कभी रातभर उसे जमीन पर सुलाये रहते थे। सुकुमारी राजनन्दिनीका शरीर मट्टीमें पड़ा पड़ा मैला होता, यह देखकर उनको तनिक भी दया न आती। रानीने उनको अनेक बार समझाया, हाथ पैर जोड़कर उनको सीधे रास्ते पर लानेका यत्न किया, परन्तु कुछ फल न हुआ। अन्तमें जब पतिके आचरण एकदम असह्य हो गये तब उसने खोलकर सब हाल एक पत्रमें पृथ्वीराजको लिखा।

बहिनका पत्र पाकर पृथ्वीराजने आद्योपान्त पढ़ा; उसे पढ़कर उनको बहुत दुःख और क्रोध हुआ। दुष्ट पाभूरायको उचित दण्ड देनेके लिये वे सिरोहीकी ओर चले और रातके समय उसके महलके सामने पहुँचे। द्वार बन्द था, इसलिये सीढ़ी लगाकर वे दीवार पार कर गये और एकदम उसके शयन-भवनके अन्दर जा घुसे। वहां पहुँचकर उन्होंने बहिनकी दुर्दशा अपनी आंखोंसे देखी। वह भूमि पर पड़ी थी, आंखोंमें नींद नहीं थी, मुंह फीका पड़ गया था और बराबर आंसू जारी थे। भाईको देखकर उसका शोक और भी उबल पड़ा; वह जोर जोर से रोने लगी। पृथ्वीराजने उसे धीरज धराया और पाभूरायकी गर्दन पर तलवार रखकर तर्जन गर्जन करना आरम्भ किया; परन्तु उनकी पतिव्रता बहिन रोती हुई उनके पांवों पर गिर पड़ी और बोली "भाई, क्षमा क्षमा; मुझे विधवा न करो,—अपनेको विधवा बनानेके लिये मैंने तुमको यहां नहीं बुलाया है।" पाभूराय भी गिड़गिड़ाकर जीवनदानके लिये प्रार्थना करने लगा। पृथ्वीराजने कहा—"यदि तुम मेरी बहिनकी जूती अपने सिर पर रखो और उसके पांव छूओ तो मैं तुम्हें क्षमा कर सकता हूं।" पाभूरायने ऐसा करना स्वीकार कर लिया। इसके बाद मानों वे एक दूसरेके मित्र हो गये; दुःख क्रोध सब जाता रहा। पृथ्वीराज सोचने लगे कि जान पड़ता है पाभूराय सब अपमान भूल गया। परन्तु यह

उनका भ्रम था; इसी भ्रममें पड़कर उन्होंने अपने प्राण गँवाये। पाभूरायके चित्त का हाल वे न जान सके, न उसकी विश्वासघातकता पहचान सके। अपरो आदर सम्मान देखकर उन्होंने समझा कि पाभूराय उदार और सरल चित्तका मनुष्य है। पाभूरायने उनको अपने यहां पांच दिन रहनेके लिये अनुरोध किया। पृथ्वीराज रहने लगे।

पांच दिन आमोद आनन्दमें बीत गये; छठे दिन बहिन और बहनोईसे बिदा होकर पृथ्वीराज कमलमीरकी ओर चले। जानेके समय पाभूरायने उनको कई लड्डू दिये थे; उनमें उन्होंने विष मिला दिया था। पृथ्वीराजको स्वप्नमें भी ऐसी कोई आशङ्का नहीं थी, इसलिये कमलमीरके पास पहुँचकर उन्होंने उनमेंसे कई लड्डू खाये। तुरन्तही सिर घूमने लगा; हृदयको बहुत कष्ट जान पड़ने लगा; धीरे धीरे अङ्ग प्रत्यङ्ग शिथिल होने लगी। बड़े कष्टसे देवीमाताके मन्दिरके आंगन तक वे पहुँचे, पर इसके आगे एक पग भी नहीं बढ़ा गया। वहीं वे लेट गये और अपनी प्राणप्रतिमा तारासे यह सम्वाद कहनेके लिये उन्होंने आदमी भेजे। परन्तु इस जन्ममें ताराबाईको वे न देख सके। नगरसे ताराके उतरते उतरते पृथ्वीराजके प्राणपखेरू उड़ गये। भारतका एक विराट् सितारा टूटकर गहरे कालसमुद्रमें डूब गया! प्रकृति भी यह देखकर रो उठी! मानों सारा संसार एक भयानक भूकम्पसे थहरा उठा, मानों किसी अनिश्चित स्थानसे हृदयको टुकड़े टुकड़े कर डालनेवाली एक शोकध्वनि निकलकर चारों ओर फैल गई! पतिव्रता तारा अपने प्यारे पतिको जीवित न देख सकी। पृथ्वीराजकी निर्जीव देह † हृदयसे लगाकर वह जीते जी आगमें जल मरी।

राणा रायमल यह शोक न सह सके। जिस पृथ्वीराजको पाकर सांगाके विदेशमें रहनेका दुःख—जयमलके मारे जानेका शोक—उन्होंने सह लिया था; जिसकी अतुल वीरतासे वे अपनी बड़ाई और गौरव समझते थे; निठुर कालने उसी पृथ्वीराजको असमयमें हर लिया। इस कठोर पुत्रशोककी आगमें राणा भी भस्म हो गये, अर्थात् उनका प्राणान्त हो गया। मेवाड़राज्यमें महा हाहाकार मचा! सब पृथ्वीराज और राणाजीके शोकमें विलाप करने लगे।

---

† "देह" शब्द संस्कृतमें पुंलिङ्ग है, पर भाषामें स्त्रीलिङ्गमें व्यवहृत होता है।

यद्यपि राणा रायमलमें उनके पूर्वजोंके समान सब गुण नहीं थे, तथापि राजोचित गुणोंसे वे भूषित थे । अनेक संकटों और विपत्तियोंको हटाकर जिस अच्छे ढंगसे उन्होंने अपने राज्यका शासन किया और जिस रीतिसे अपने राजोचित सम्मानोंकी रक्षा की उससे अवश्यही उनको एक सुयोग्य राजा मानना पड़ेगा प्रजाओंकी उनपर बड़ी भक्ति थी और उनकी मृत्युसे इनको बहुत शोक हुआ ।

आठवां अध्याय ।

राणा संग्रामसिंह (सांगा) का सिंहासनारोहण;—मुसलमानी साम्राज्यकी अवस्था;—मेवाड़का गौरव;—सांगाकी जीत;—भिन्न भिन्न जातियोंके भारत पर आक्रमण करनेका वृत्तान्त;—बाबरकी चढ़ाई;—उसका देहलीके बादशाहको पराजित करके मारना;—बाबर और सांगाका युद्ध;—कनवाकी लड़ाई;- सांगा का पराजय मारा जाना और चरित्रवर्णन;—राणा रत्नका सिंहासनारोहण;—मृत्यु;—राणा विक्रमजित;—उनके आचरण;—सरदारोंके साथ विद्वेष;—मालवेके अधिकारीका चित्तौड़ पर आक्रमण करना;—चित्तौड़का ध्वंस;—राजपूतनियोंका बलिदान;—मुसलमानोंका चित्तौड़में लूट मचाना;—चित्तौड़ रक्षाके लिये हुमायूं का आना;—और चित्तौड़का उद्धार करके वहांके सिंहासन पर विक्रमजितको पुन: बैठाना;—सरदारोंका विक्रमजितको सिंहासनच्युत करना;—बनवीरका चुनाव;—विक्रमजितका मारा जाना ।

संग्रामसिंहने, जो राणा सांगाके नामसे अधिक प्रसिद्ध हैं, संवत् १५६५ (सन् १५०८ ई०) में चित्तौड़के सिंहासन पर आरोहण किया । उनकी उत्तम शासन-प्रणालीके कारण उनके समयमें मेवाड़राज्यकी बहुतही अधिक उन्नति हुई । भट्ट-कवियोंने उनके गुणोंका वर्णन करते समय रूपकमें लिखा है कि "सांगा मेवाड़के गौरवकी चोटी पर कलसके समान थे ।" परन्तु दु:खकी बात है कि मेवाड़-राज्य सदा ऐसाही गौरवशाली नहीं रहा;—सांगाके साथ उसका गौरव भी चला गया । यद्यपि वीरवर सांगाकी मृत्युके बाद भी कुछ दिनोंतक मेवाड़की उन्नतिके दो चार चिन्ह दिखाई देते रहे, पर सच पूछिये तो वे चिन्ह डूबते हुए सूर्यकी अन्तिम किरणोंके समान थोड़ी देरके लिये थे ।

जो इन्द्रप्रस्थ नगर पाण्डवोंकी पवित्र भूमि था, जहांके उनके तुआर वंशधर बहुत दिनोंतक अधिकारी थे, जो हिन्दूराजचक्रवर्त्ती चौहान पृथ्वीराजका प्रथम और अन्तिम साधनास्थल था,—वही भारतके दुर्भाग्यसे गजनी, गोरी, खिलजी और लोदी वंशके मुसलमान अधिकारियोंके अधीन हुआ !—समयके हेरफेरसे बुरी अवस्थाको पहुँचा ! उसके विस्तृत छत्रके नीचे एक समय जो बड़ा भारी राज्य था

वह इस समय असंख्य टुकड़ोंमें बँट गया और उन जुदे जुदे टुकड़ोंमें छोटे छोटे अनेक स्वतन्त्र राज्य स्थापित हुए। इन सब राज्योंके अधिकारी हिन्दुओंसे विद्वेष रखनेवाले थे; परन्तु उनमें जरा भी बल वा विक्रम नहीं था; अतएव मेवाड़के अधिपति उनको कुछ भी परवा नहीं करते थे। उस समय काशी और देहलीके बीच चार स्वतन्त्र राज्य † स्थापित थे। इन चारों राज्योंके अधिकारी नाम मात्रके राजा थे। मेवाड़राज्यके पिछले विप्लवके समय मालवा और गुजरातके मुसलमान अधिकारी विद्रोहियोंमें मिल गये थे; पर मेवाड़को वे कुछ हानि नहीं कर सके थे। तिसपर जब वीरवर संग्रामसिंह (सांगा) मेवाड़के वीरपुत्रोंको साथ लेकर युद्धक्षेत्रमें गये तब वे उनके सामने न ठहर सके। संक्षेप यह कि सांगा उस समय भारतके सबसे बड़े राजा थे। मारवाड़ और आमेरके ‡ नृपति उनको कर देते थे। ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, रायसिन, काल्पी, चन्देरी, बूंदी, गागरोन, रामपुर और आबू आदिके "राव" उपाधिधारी राजे उनके अधीन सामन्तके समान थे। वास्तवमें सांगाका उस समय बड़ा प्रताप था। आठ सहस्र सवार, ऊँचे दर्जेके सात राजे, नौ 'राव', और 'रावल' तथा 'रावत' उपाधिधारी एकसौ चार सरदार, पांचसौ हाथी लेकर उनके साथ युद्धभूमिमें गये थे।

विपत्तिके समय (अर्थात् देशके बाहर होनेके समय) जिन लोगोंने सांगाको आश्रय दिया था उनके उपकारोंका बदला चुकाकर उन्होंने सच्ची कृतज्ञताका परिचय दिया। श्रीनगरके कर्मचन्द्रको उन्होंने अजमेरकी एक भूमिवृत्ति दी। इस कर्मचन्द्रका जगमल नामक एक पुत्र था; चन्देरी पर अधिकार करनेके समय उसने सहायता की थी अतएव राणाने उसे 'राव' की उपाधि दी।

भीतरी झगड़ेके कारण राज्यमें जो गड़बड़ पड़ रही थी राणा संग्रामसिंहने

† देहली, बीना, काल्पी और जौनपुर।

‡ उस समय आमेरके जो अधिपति थे उनका नाम पृथ्वीराज था। वे अबतक "राव" कहे जाते थे। उनके बारह पुत्रोंसे कछवाहा कुलमें १२ गोत्र उत्पन्न हुए हैं। मुगल बादशाह हुमायूंके समयसे कछवाहे राजपूतोंका राजनीतिक जीवन प्रारम्भ हुआ।

राजसिंहासन पर बैठकर थोड़ेही दिनोंमें उसे दूर कर दिया। यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि वे एक साहसी और बड़े वीर राजा थे । यदि कोई यह पूछे कि साहसी थे तो अपने उत्तराधिकारी होनेका हक और राजपुत्रोचित सम्मान छोड़कर कापुरुषोंकी तरह जंगलमें अज्ञातवास क्यों करते थे, तो इसका यह उत्तर होगा कि उनके इस काममें कुछ भी कापुरुषता या हीन साहसका परिचय नहीं मिलता, बल्कि इससे उनकी भविष्यदर्शिता और वीरोचित धैर्य तथा सहनशीलता झलकती है। यदि वे अपने बुद्धिबलसे विचार न कर स्वार्थरक्षाके लिये खुलाखुली पृथ्वीराजसे लड़ जाते, तो मेवाड़को जो हानि होती उसका अनुमान सहजमें किया जा सकता है।

राणा संग्रामसिंह (सांगा) युद्धविद्यामें कुशल थे। उत्तम रणरीतिसे उन्होंने अपनी सेनाको सँवारा था । तैमूरके वीर वंशधरके साथ लड़नेसे पहले देहली और मालवाके मुसलमान अधिकारियोंको उन्होंने १८ बार युद्धमें पराजित किया था। इन लड़ाइयोंमेंसे दोके समय देहलीके बादशाह इब्राहीम लोदीने स्वयं आकर इनका सामना किया था और दोनोंही बार वह सांगासे पराजित हुआ था; विशेषकर घटोलीकी अन्तिम लड़ाईमें मुसलमान सैनिक इस प्रकार पराजित हुए थे कि कदाचित् ही दो चार बचकर स्वदेशको लौट सके होंगे। उक्त लड़ाईमें मुसलमान बादशाहके किसी कुटुम्बको संग्रामसिंहने चित्तौड़में लाकर कैद किया था। उस समय मेवाड़की सीमा चारों ओर बहुत दूर तक फैली थी। उत्तरमें बीनाके ¶ पाससे बहनेवाली "पीलखाल" तक, पूर्वमें सिन्धु नदी तक, दक्षिणमें मालवे तक और पश्चिममें मेवाड़की दुर्गम पहाड़ियों तक । इस प्रकार विशाल राजस्थानके बड़े अंशके अधिकारी होकर, अपने देश और अपनी जातिके राजाओंमें सबसे श्रेष्ठ माने जाकर, राणा संग्रामसिंह धीरे धीरे गौरवकी सबसे ऊँची सीढ़ी पर चढ़ रहे थे, इतनेमें मुसलमान वीर बाबरके आनेका हाल भारतके पश्चिम द्वारसे सुन पड़ा; मानों सारी भारतभूमि सहसा कांप उठी; साथही साथ राणा संग्रामकी उन्नतिका मार्ग भी रुक गया। वास्तवमें यदि बाबर अणु और आव्हरतीसके

¶ आगरेके २५ मील दक्षिण ओर।

किनारेके वीर निवासी उजबक † और तातार सैनिकोंको लेकर भारत पर चढ़ाई न करता, यदि भारतके छोटे छोटे कमजोर मुसलमान अधिकारी उसके साथ न मिल जाते, तो कौन कह सकता है कि आज भारतका भाग्यचक्र किसके हाथोंमें होता ? अवश्यही यहांका राजमुकुट किसी हिन्दू राजाके मस्तक पर शोभित दिखाई देता और भारतकी विजयपताका इन्द्रप्रस्थसे चित्तौड़ दुर्गकी ऊंची चोटी पर उड़ती होती। परन्तु अभागे भारतवासियोंके दुर्भाग्यसे जो होना था वह होही गया।

एशियाके मध्यदेशके असभ्य निवासी लोग भारतके सदासे शत्रु रहे हैं। अत्यन्त प्राचीन कालसे उन्होंने भारतको जो हानियां की हैं उनका प्रमाण इतिहासोंमें विद्यमान है। जो हो, इससे यह बात निश्चित रीतिसे मालूम होती है कि भारतमें कभी दृढ़ एकता नहीं थी। आरम्भसे ही भारतभूमि पारस्परिक झगड़ेके कारण असंख्य छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त है। सिकन्दर आज़मके समयके इतिहास-लेखकोंने भी यही बात लिखी है। जिस समय सिकन्दरने भारत पर चढ़ाई की थी उस समय अकेले पञ्जाबमें अनेक छोटे छोटे राज्य थे और उनके सिवा बहुतसे नागरिक सरदार भी थे। कहा जाता है कि दारायुने अपने अधीन राज्योंमेंसे भारतवर्षको सबसे बढ़कर माना था। इसी प्रकार तक्षक, जित, पारद, हूण, काथि यूनानी, ईरानी, गोरी, चगताई आदि भारतमें आये थे और यहां लूट मार मचाकर अपने देशको लौट गये थे। कोई कोई तो यहीं रहने लगे और अपनी मातृभूमिका मोह भूल गये। सो, जिस विदेशी जातिने इस देशपर चढ़ाई की उसीने कुछ समयके लिये इसका भाग्यचक्र झुकाया। परन्तु राणा संग्रामसिंह वा सांगाके प्रतियोगी बाबरने भारतदेशको गुलामीकी बेड़ियोंमें इस प्रकार जकड़ा कि फिर इस गुलामीसे इसका छुटकारा न हुआ, और भविष्यमें कभी होगा इसकी

† उजबक एक दोगली जाति है। तुर्क मुगल आदि कई मुसलमान जातियोंके मेलसे पैदा हुई है। पहले उजबकोंने साइबीरियाके एक बड़े भाग पर अधिकार कर लिया था। इस समय वे अक्सुके किनारेके बड़े देशमें रहते हैं। [Erskene's Baber, Introduction, pp. lix. lx.] सन् १३४०ई० में अपने सरदार उजबकखांके साथ ये मुसलमान हो गये थे। बहुतोंका अनुमान है कि उजबकखांके नामकेही अनुसार वे लोग उजबक कहे जाने लगे।

आशा भी नहीं है। जबतक भारतवासियोंकी अज्ञानता दूर नहीं होगी और उनके ज्ञाननेत्र नहीं खुलेंगे, जबतक भारतभूमिमें नवीन जीवन नहीं पड़ेगा, तबतक यह जञ्जीर नहीं टूटेगी—तबतक भारतको दुःखनिशा बीतकर कभी सवेरा नहीं होगा। परन्तु जब सात समुद्र पारके निवासी थोड़ेसे अंग्रेजोंने आकर मोढ़, पारद, तातारी आदि विदेशियोंको पराजित कर दिया, तब आशा की जा सकती है; क्योंकि किसीकी अवस्था कभी एक समान नहीं रहती; कोई सदा सुखी या दुःखी नहीं रहता। सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख लगाही रहता है; यह संसारका बंधा हुआ नियम है। तो क्या भारतके लिये यह नियम कुछ न करेगा? नहीं, यह कभी नहीं हो सकता; यदि होगा तो बड़ी हलचल मचेगी; सारा संसार उथलपुथल हो जायगा! संसारके इसी बराबर बदलते रहनेवाले नियमके अनुसार भारतको तरह दूसरे राज्य भी दुर्दशाग्रस्त हुए थे। फिर किसीकी उन्नति हुई और कोई डूबेही रह गये। परन्तु उन देशोंके साथ भारतका मिलान करनेसे उनके और इसके बीच बहुत अन्तर जान पड़ता है। विजातीय और विधर्मी शासनकर्त्ताओंके कठोर अत्याचारोंसे उनका मूल धर्म्म नष्ट हो गया है, प्राचीन जातीयता लुप्त हो गई है और बहुतसे दोगले पैदा हो गये हैं। परन्तु यह भारतवर्ष --यह पवित्र देश – उनसे एकदम विपरीत अवस्थामें है। भारतने विधर्मियों और विजातियोंके जितने अत्याचार सहे हैं उतने अत्याचार कदाचित् संसारके किसी दूसरे राज्यको नहीं सहने पड़े होंगे; तथापि यहांका प्राचीन धर्म्म यहांकी प्राचीन रीतिनीति ज्योंकी त्यों विद्यमान हैं;—भारतके हृदयके वीर पुत्र राजपूतोंने अत्यन्त कठोर दासत्व भोगने पर भी अबतक अपने पूर्वजोंके पवित्र सनातन धर्म्मको नहीं त्यागा है, अपने प्राचीन आचार विचारोंको नहीं छोड़ा है। दो हजार वर्ष पूर्व जिस समय सिकन्दरने भारतपर चढ़ाई की थी उस समय यहांके निवासियोंका जो धर्म्म जो राजनीति और जो आचार व्यवहार थे वे इस समय भी हैं। उनकी यह नीति अच्छी है या नहीं इसका निर्णय करना पाठकोंका काम है, इतिहाससे इससे कुछ मतलब नहीं। हमारा केवल यह कहना है कि जिस उदार जातिके हाथोंमें परमेश्वरने भारतके निवासियोंका भाग्यचक्र दिया है उसको उचित है कि वह हितैषिणी नीतिसे उनके साथ बरताव करे; क्योंकि इस भूमिकी राखके अन्दर जो